

# जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2534

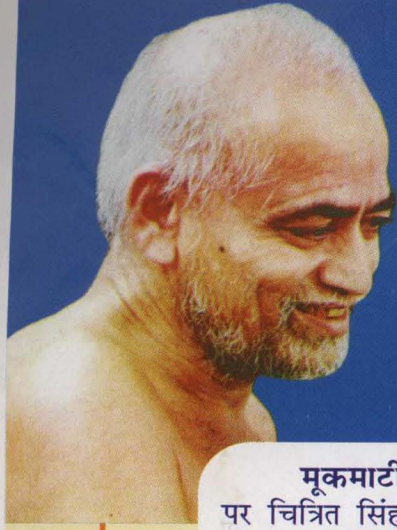


श्री दि. जैन मन्दिर कलभावी (कर्नाटक)  
में विराजमान सात फुट ऊँची प्राचीन जिनप्रतिमा

ज्येष्ठ-आषाढ़, वि.सं. 2065

जून-जुलाई, 2008

• मूल्य 15/-



# सिंह और श्वान

आचार्य श्री विद्यासागर जी

मूकमाटी महाकाव्य की निम्नलिखित काव्यपंक्तियों में मिट्टी के घड़े पर चित्रित सिंह और श्वान के चरित्र का वर्णन छल-कपट, चाटुकारिता और दासता आदि गर्हित प्रवृत्तियों के प्रति घृणा तथा साहस, स्वाभिमान एवं स्वातन्त्र्य आदि अभिनन्दनीय गुणों के प्रति अनुराग जगाता है।

कुम्भ पर हुआ वह  
सिंह और श्वान का चित्रण भी  
सन्देश दे रहा है-  
दोनों की जीवन-चर्या, चाल  
परस्पर विपरीत है।  
पीछे से, कभी किसी पर  
धावा नहीं बोलता सिंह,  
गरज के बिना गरजता भी नहीं,  
और बिना गरजे  
किसी पर बरसता भी नहीं  
यानी  
मायाचार से दूर रहता है सिंह।  
परन्तु, श्वान सदा  
पीठ-पीछे से जा काटता है,  
बिना प्रयोजन जब कभी भौंकता भी है।  
जीवन सामग्री हेतु  
दीनता की उपासना  
कभी नहीं करता सिंह  
जब कि

स्वामी के पीछे-पीछे पूँछ हिलाता  
श्वान फिरता है एक टुकड़े के लिए।  
सिंह के गले में पट्टा बँध नहीं सकता।  
किसी कारणवश  
बन्धन को प्राप्त हुआ सिंह  
पिंजड़े में भी  
बिना पट्टा ही घूमता रहता है,  
उस समय उसकी पूँछ  
ऊपर उठी तनी रहती है  
अपनी स्वतन्त्रता-स्वाभिमान पर  
कभी किसी भाँति  
आँच आने नहीं देता वह।  
और श्वान  
स्वतन्त्रता का मूल्य नहीं समझता,  
पराधीनता-दीनता वह  
श्वान को चुभती नहीं कभी,  
श्वान के गले में जंजीर भी  
आभरण का रूप धारण करती है।

मूकमाटी ( पृष्ठ १६९-१७० ) से साभार

जून-जुलाई 2008

मासिक

वर्ष 7,

अङ्क 6-7

## जिनभाषित

सम्पादक  
प्रो. रतनचन्द्र जैन

## कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा  
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)  
फोन नं. 0755-2424666

## सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़  
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा  
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर  
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौता  
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ  
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

## शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी  
(मे. आर.के. मार्बल)  
किशनगढ़ (राज.)  
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

## प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ  
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा-282 002 (उ.प्र.)  
फोन : 0562-2851428, 2852278

## सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.  
परम संरक्षक 51,000 रु.  
संरक्षक 5,000 रु.  
आजीवन 1100 रु.  
वार्षिक 150 रु.  
एक प्रति 15 रु.  
सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ काव्य : सिंह और श्वान : आ.पृ. 2  
: आचार्य श्री विद्यासागर जी
- ◆ मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ : आ.पृ. 3
- ◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ : आ.पृ. 4
- ◆ सम्पादकीय : श्रुताराधना-शिविर : मूलचन्द्र लुहाड़िया 2
- ◆ प्रवचन
  - उन्नति की खुराक : अचौर्यव्रत : आचार्य श्री विद्यासागर जी 4
- ◆ लेख
  - केरल में जैनधर्म : मुनिश्री अभयसागर जी 13
  - मनस्थिर करने का उपाय : स्वाध्याय: परमं तप: : आर्यिका श्री सुप्रभावती जी 15
  - धरणेन्द्र-पद्मावती : पं. मिलापचन्द्र कटारिया 17
  - दिगम्बर जैन मुनि : श्री सुमेरचन्द्र जैन शास्त्री 19
  - जैनदर्शन में संसार का स्वरूप : ब्र. प्यारेलाल जी बड़जात्या 23
  - कुन्दकुन्द की दृष्टि में असद्भूत-व्यवहारनय : प्रो. रतनचन्द्र जैन 26
  - विद्वानों का मूल्याङ्कन : डॉ. शीतलचन्द्र जैन 28
  - कायोत्सर्ग एवं णमोकारमंत्र : पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन 30
  - जैनपरम्परासम्मत 'ओम्' का प्रतीक चिह्न 35
  - साम्राज्ञी शान्तलादेवी : पं. कुन्दनलाल जैन 36
- ◆ जिज्ञासा-समाधान : पं. रतनलाल बैनाड़ा 38
- ◆ ग्रन्थसमीक्षा
  - आत्मानुशासन : समीक्षक-प्रा. अभयकुमार जैन 43
  - आन-बान-शान की धरोहर बेटियाँ : समीक्षक- श्रीसुरेश जैन सरल 45
- ◆ समाचार 3, 14, 16, 18, 22, 29, 42, 46, 47, 48

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

## श्रुताराधना-शिविर

मध्यप्रदेश के एक छोटे से कस्बे सिलवानी में प.पू. आचार्य श्री विद्यासागर जी के संसंध सान्निध्य में द्वितीय श्रुताराधना शिविर का भव्य आयोजन दिनांक 6 जून से 8 जून 2008 तक हुआ। यद्यपि सिलवानी के लिए आवागमन की सीधी एवं सुविधाजनक बस आदि की व्यवस्था नहीं है, तथापि कुण्डलपुर में गत वर्ष सम्पन्न प्रथम श्रुताराधना-शिविर की प्रसिद्धि की सुगंध ने विद्वानों, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों एवं स्वाध्यायशील भाई-बहनों को प्रचुर संख्या में शिविर में आकृष्ट किया। प्रातः कालीन सत्र 7:30 बजे से 9:30 बजे तक एवं द्वितीय सत्र मध्याह्न 2:30 बजे से 5 बजे तक चलता था। तीन दिनों में 5 सत्रों में 5 प्रवचन प.पू. आचार्यश्री के हुए। अन्तिम सत्र समापन सत्र था। मध्याह्न के सत्र में 4 बजे से 5 बजे तक का समय शंकासमाधान के लिए रखा गया। विद्वान् श्रोतागणों के निमित्त से पू. आचार्यश्री की वाणी की अविरल धारा निराबाध रूप से प्रवाहित हुई। प. पू. आचार्यश्री ने चर्चित सैद्धांतिक विषयों पर अपना महत्त्वपूर्ण विश्लेषण प्रदान किया। अपने सम्मुख विद्वानों को देखकर पू. आचार्यश्री ने वाणी के द्वारा पठन एवं चिंतन से प्रसूत आगमिक विषय को रुचि से श्रोताओं को परोसा और उसको श्रोताओं ने पूर्ण मनोयोग एवं एकाग्रता से ग्रहण किया। पूरे समय में शिविर-सभा में शांतिपूर्ण सन्नाटा छाया रहा। श्रोतागण सुनने में इतने तन्मय हो रहे थे कि संभवतः किसी को आसन बदलने तक का भी विकल्प नहीं आया।

अंतिम दिन का द्वितीय सत्र समापन सत्र के रूप में आयोजित था। उस दिन आगंतुक कतिपय विद्वानों ने शिविर के अपने अनुभव, अपने मन की बात अपनी भाषा में सुनाई। लगभग सभी ने यह कहा कि हम शिविर में आकर धन्य हो गए। हमको जो विषय प. पू. आचार्यश्री के द्वारा प्राप्त हुआ वह अभूतपूर्व था, अब तक हमारे ज्ञान में ये बातें इस रूप में नहीं आई थीं। पू. आचार्यश्री के उद्बोधन से हमारी अनेक भ्रांतियाँ दूर हुई हैं। कतिपय व्यक्तियों द्वारा आगम के विपरीत अर्थ का सहारा लेकर धार्मिक लोगों में एकांत मान्यताओं का जो प्रचार किया जा रहा है, हम उसका सप्रमाण निरसन कर मूल दिगम्बर सिद्धान्तों की रक्षा करने में प्रयत्नशील रहेंगे।

प. पू. आचार्यश्री ने जिनवाणी का गहन अध्ययन किए बिना तथा जैनदर्शन में प्ररूपित नयव्यवस्था का ज्ञान प्राप्त किए बिना प्रवचन करनेवालों के प्रति खेद प्रकट करते हुए कहा कि उन्हें पहले प्रवचनभक्ति करना सीखना चाहिए, जिससे कि सम्यग्ज्ञान का विकास हो। प्रवचन करने का अधिकार तो बाद में प्राप्त होता है। पहले परमात्मा की बात करनी चाहिए, परमात्मा की भक्ति से ही आत्मा का परिचय प्राप्त होता है। जिनेन्द्र-परमात्मा की भक्ति से शुभबंध होता है, किन्तु साथ ही संवर-निर्जरा भी होती है। एक कारण से अनेक कार्य होते हैं, अतः जिनेन्द्र भक्ति से पुण्यबंध के साथ भावों की विशुद्धि के द्वारा संवर-निर्जरा भी होती है। मनुष्यपर्याय में जिनविम्बदर्शन को सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में कारण बताया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक विषयों जैसे पारिणामिकभाव, क्षायोपशामिक ज्ञान, प्रवचनभक्ति, निश्चय-व्यवहार-रत्नत्रय, द्रव्यश्रुत, भावश्रुत, मोक्षमार्ग में प्रशस्त राग का अवदान आदि पर प. पू. आचार्यश्री ने आगमाधार-पूर्वक तलस्पर्शी उद्बोधन प्रदान किए। सभी विद्वानों ने इस पारमार्थिक मार्ग-दर्शन के लिए प. पू. आचार्यश्री के प्रति विनयपूर्वक आभार व्यक्त किया और साग्रह निवेदन किया कि अगले वर्षों में भी प्रतिवर्ष ऐसा अनुग्रह करने की अवश्य कृपा करें। अधिकांश विद्वानों की यह भावना थी कि शिविर का समय तीन दिन अपर्याप्त रहता है, अतः आगामी शिविर पाँच या सात दिन के लिए आयोजित हों।

प. पू. आचार्यश्री के तात्कालिक चर्चित महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर धारावाहिक मार्मिक उद्बोधन प्राप्त कर सभी प्रबुद्ध श्रोतागण भावविभोर हो गए। सभी को ऐसा प्रतीत हुआ मानों प. पू. आचार्यश्री ने जिनवाणी

के गहन अध्ययन को चिंतन की मथनी से मथकर प्राप्त तत्त्वरूप नवनीत को श्रोताओं को वितरित किया है। पू. आचार्यश्री ने आगम के कुछ ऐसे स्थलों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया, जहाँ मूल संस्कृत टीका और उसके हिंदी अनुवाद में भिन्नता है। पू. आचार्यश्री ने विद्वानों को यह सलाह दी कि वे जहाँ तक संभव हो, ग्रंथों का स्वाध्याय मूल एवं प्राचीन संस्कृत टीकाओं के आधार पर ही करें। पू. आचार्यश्री ने सम्पन्न हुए दो श्रुताराधना शिविरों के माध्यम से सबको अपना चिंतन एवं अनुभूतिप्रसूत प्रवचन प्रदान कर उपकृत किया है। इस शिविर में एक वीतरागी संत के चरणों में बैठकर विद्वानों एवं स्वाध्यायशील व्यक्तियों के द्वारा श्रुत की आराधना की गई है, अतः यह शिविर सही अर्थ में श्रुताराधनाशिविर कहा जाना चाहिए। ऐसे तत्त्वदर्शक उपयोगी शिविर का संयोग हमें बार-बार प्राप्त हो यही भावना है।

मूलचन्द लुहाड़िया

## प्रथम जैन तीर्थंकर का निर्वाण स्थल कैलाश मानसरोवर में

कपिल दवे. अहमदाबाद। जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ का निर्वाणस्थल कैलाश मानसरोवर के पास अष्टापद पर्वत पर कहीं होने संबंधी धारणाओं के बीच अंतरिक्षवैज्ञानिकों और न्यूयार्क के प्रमुख जैन सेंटर ने दावा किया है कि उन्होंने श्री आदिनाथ के निर्वाण स्थलवाले मूल अष्टापद पर्वत और उनका मंदिर खोज निकाला है।

सेंटर द्वारा कराए गए शोध के मुताबिक सेटेलाइट आई. आर. एस. एल. आई. एस. एस.-4 से मिले चित्रों में ज्ञानद्राग मठ के पास कुछ चौकोर और आयताकार आकृतियाँ दिखाई देती हैं। साथ ही इस स्थल का दौरा करने पर भी इसके खंडहर दिखाई देते हैं। हालांकि इस स्थल की पुष्टि अभी बाकी है। दरअसल, सेंटर न्यूयार्क के जैनमंदिर में अष्टापद का मॉडल बनाने की योजना पर काम कर रहा है। इस सिलसिले में उसने दो वर्ष पहले मूल अष्टापद का पता लगाने के लिए शोध करना शुरू किया था।

सेटेलाइट इमेजिंग की ली मदद : सेंटर की ओर से शोध कर रहे अंतरिक्ष वैज्ञानिक डॉ. पी.एस. ठक्कर ने बताया कि धर्मराज नारसांग के पास स्थित पहाड़ के, प्रभु आदिनाथ के निर्वाणस्थल होने की ज्यादा संभावना दिखती है। यह शोध जैनसाहित्य और वैज्ञानिक-दृष्टिकोण के आधार पर दो चरणों में हुआ था, पहला मई से जून 2006 और फिर जुलाई से अगस्त 2007 तक।

अलग-अलग अष्टापद : कैलाश मानसरोवर के पास अनेक स्थानों पर 'अष्टापद महातीर्थ' होने की मान्यता है, लेकिन इनके कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है। इसलिए शोध करने के लिए भेजे गए दल ने सभी संभावित स्थलों का अध्ययन किया। इसमें कैलाश, बारखा तराई सारबोचे के पास अष्टापद, नंदी पर्वत, ज्ञानद्राग मठ या गंगता मठ और सेरलॉग गोंपा के बीच स्थित अष्टापद पर्वत, ज्ञानद्राग या गंगता मठ और इसके उत्तर में स्थित छोटी पहाड़ी, कैलाश के नीचे स्थित 13 द्रीगुंग और त्रिनेत्र या गोंबो फेंग का अध्ययन किया गया।

कहाँ है नारसांग- डॉ. ठक्कर के मुताबिक संभावित अष्टापद स्थल, कैलाश पर्वत के दक्षिण पूर्व में है। इस स्थान पर सेरदुंग चुकसुम ला या गंगपो संगलम ला से आसानी से पहुँचा जा सकता है।

“सेटेलाइट डाटा से धर्मराज नारसांग के अलावा किसी दूसरे स्थल को अष्टापद पर्वत या अष्टापद महातीर्थ मानने का कोई आधार नहीं है। यह स्थान अष्टापद का सबसे निकटतम संभावित स्थल लगता है, जिसकी पुष्टि की जरूरत है।” -डॉ. पीएस ठक्कर

वरिष्ठ अंतरिक्ष वैज्ञानिक, 'दैनिक भास्कर',  
भोपाल, २३ मई २००८ से साभार

## उन्नति की खुराक : अचौर्यव्रत

आचार्य श्री विद्यासागर जी

जिन्होंने इस विश्व के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लिया, ऐसे सर्वज्ञ वीतरागियों ने सर्वज्ञत्व की प्राप्ति के लिये हमें एक सूत्र दिया है- वह है 'अस्तेय' (अचौर्यव्रत)। 'स्तेय' कहते हैं अन्य पदार्थों के ऊपर अधिकार जमाने का वैचारिक भाव, जो असंभव है, उसे संभव करने की एक उद्यमशीलता, जो ब्रह्मा को भी संभव नहीं है, विषयकषायी उसे संभव करने का प्रयास कर रहा है। स्तेय का अर्थ है- चोरी, 'पर' का ग्रहण करना। जब तक हम इस रहस्य को नहीं समझेंगे कि उसके ऊपर हमारा अधिकार हो सकता है? तब तक हमारा भवनिस्तार नहीं होगा। 'स्व' के अलावा 'पर' के ऊपर हमारा अधिकार भी नहीं हो सकता। चोरी का अर्थ यही है कि हम वस्तु के परिणामन को, वस्तुस्थिति को नहीं समझा पा रहे हैं। 'स्व' क्या है और 'पर' क्या है, जब तक यह ज्ञान नहीं होगा तब तक संसारी जीव का निस्तार नहीं होगा।

सुख के लिये उद्यम करना परमावश्यक है। किन्तु सुख के लिये उद्यम करना परमावश्यक होते हुये भी सुख क्यों नहीं हो रहा है? इस बारे में विवेक-ज्ञान प्राप्त करना भी परमावश्यक है। भगवान् महावीर ने बताया है कि विस्मृति संसारी जीव को 'स्व' की ही हुई है, 'पर' की विस्मृति आज तक नहीं हुई। 'पर' को पर समझना अत्यन्त आवश्यक है। 'पर' को पर जानते हुये भी यदि हम उसको लेने का भाव करते हैं, तो ध्यान रहे हम चोर बन जायेंगे। आप कह सकते हैं कि इस प्रकार चोर बनने लगे, तो सभी चोर सिद्ध होंगे। तो क्या आप अपने आप को साहूकार मान रहे हैं? ध्यान रहे साहूकार वही है, जिसके पास धर्म है, साहूकार वही है, जो चोरी के भाव नहीं लाता और विशेष सेठ-साहूकार तो वही है, जो पर की चीजों के ऊपर दृष्टिपात भी नहीं करता। आत्मा के पास दृष्टि है आत्मा के पास ज्ञान है, दर्शन है, उपयोग, जानने की, देखने की, संवदेन करने की शक्ति है। यदि आप इनके लिये भी मना करते हैं, तो फिर सर्वज्ञ भी चोर सिद्ध होंगे, क्योंकि वे भी तीन लोक का देखने जाननेवाले हैं, किन्तु अन्तर

है, हमारा देखना-देखना तो है ही, साथ में लेना भी है, हमारी दृष्टि में लेने के भाव हैं, प्राप्ति के भाव हैं, और उनकी दृष्टि में लेने के भाव नहीं हैं, केवल देखने की क्रिया है।

एक दर्शनिक ने जगत् की परिभाषा करते हुये लिखा है कि- 'दूसरा जो भी है वही दुःख और नरक है।' जो अपनी दृष्टि के माध्यम से उपजा हुआ 'सिद्धान्त' होगा वह 'सिद्धान्त' नहीं माना जा सकता, उन्होंने यह घोषणा कर दी कि 'दूसरा' तुम्हारे लिये दुःख नहीं है, अपितु दूसरे को पकड़ने की जो परिणति है, भाव है, वह हमारे लिये दुःख और नरक का काम करता है। सिद्धान्त में यह परिवर्तन आया, यह अन्तर आया। वीर प्रभु सर्वज्ञ वीतरागी विश्व के अस्तित्व को मानते हैं, विश्व के अस्तित्व को जानते हैं, हमसे बहुत ऊँचा ज्ञान रखते हैं, तथा वे इनको जानते हुये भी पकड़ने का भाव नहीं रखते। पकड़ना चोरी है, जानना चोरी नहीं है। हमारी दृष्टि लेने के भाव से भरी हुई है और उनकी दृष्टि ज्ञान भाव से भरी हुई है। वे साहूकार हैं और शेष जितने भी लोग हैं वे सब चोर हैं। आप दूसरों को चोर सिद्ध नहीं कर सकते, नहीं तो स्वयं चोर बन जायेंगे। हम तो अपने आपको साहूकार सिद्ध कर देंगे, क्योंकि हमारे पास बहुमत है। आप बहुमत के माध्यम से, चाहे तो साहूकार कहला सकते हो, तब तो विश्व का प्रत्येक व्यक्ति साहूकार बन जायेगा, किन्तु साहूकारी में जो मजा आना चाहिये, वह मजा आपको एक क्षण के लिये भी नहीं आ रहा है।

दुनियाँ की आखिर उस वीर प्रभु की ओर ही दृष्टि क्यों जा रही है? अर्थ यही है कि हम मात्र चोरी से डरते हैं, अर्थात् मोक्षमार्ग सिद्धान्त में जो प्ररूपित शब्द हैं, उनसे कुछ ज्ञान प्राप्त करके हम कह सकते हैं कि- हमको साहूकार बनना है, या कि यह कानून लौकिक शास्त्र में भी है, चोरी करना तो एक बहुत बड़ा पाप है और चोरी करनेवाला सज्जन नागरिक नहीं कहला सकता। राजकीय सत्ता का आज्ञा के अनुरूप चलना है, इसलिये चल तो देते हैं, किन्तु चोरी से बचते

नहीं हैं क्योंकि पगडण्डी ढूँढ लेते हैं आप, भले आपको यहाँ पर दण्डित न किया जाये, किन्तु सिद्धान्त के अनुरूप तो आप द्रव्य-प्रधान हैं। आचार्य समन्तभद्र ने अभिनन्दन भगवान् की स्तुति करते हुये लिखा है कि- हे भगवान्! यह संसारी प्राणी, राजा के भय से, माता-पिता के भय से, अपनों से बड़ों के भय से, बलवानों के भय से, अन्याय-अत्याचार, पाप, नहीं करता किन्तु करने के भाव नहीं छोड़ता। ऐसा विद्वान् जो कि बन्धव्यवस्था को जाननेवाला है, साथ ही अत्याचारी-अनाचारी भी हो, तो वह ऊपर से बच जाये, पर अन्दर से नहीं बच सकता।

राजकीय सत्ता का अधिकार अपराध के ऊपर है और वह उस अपराधी को दण्डित भी करती है, पर उस अपराधी के शरीर के ऊपर ही उसका अधिकार है-भावों के ऊपर उसका अधिकार नहीं है। भावों के ऊपर अधिकार चलानेवाला कौन है? भावों के ऊपर अधिकार चलानेवाला एक ही है और वह है 'आणिवक शक्ति' जिसे कर्म कहते हैं। वह कर्म आपके चारों ओर ही रहता है, सी.आई.डी. के गुप्तचरों के समान। गुप्तचर छिपे-छिपे हर कार्य को देखा करते हैं और जहाँ कहीं भी आपका स्खलन देखने में आया, तो आपको पकड़ लेते हैं। इसी प्रकार ज्यों ही आत्मा के अन्दर कोई भाव उठा, त्यों ही वह कर्म अपने आपको (आपके साथ) बाँध देता है, कर्म आपके प्रत्येक प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लेते हैं, आप फिर किसी भी प्रकार से बाहर नहीं जा सकते, एक भावदण्ड है और दूसरा द्रव्यदण्ड। मात्र वर्तमान में सांसारिक जेल में न जाना पड़े, इसके लिये इस प्रकार के भावों से जब बचेंगे, तब वास्तविक रूप से उस चौर्यकार्य से बचेंगे और तभी साहूकार कहलायेंगे। उस साहूकारों का मजा भी आपको तभी मिल पायेगा।

आचार्य प्रश्न पूछते हैं कि- यहाँ पर भी और आगे भी इस बंध के माध्यम से दुःख-पीड़ा का अनुभव करना पड़ता है। ऐसा कौन-सा विद्वान् होगा जो कि राग-द्वेष, मोह-मद करके, दूसरों को, पर को, अपने अन्दर में रखने का भाव करके, बन्धन को सहर्ष स्वीकार करेगा? कोई नहीं है, इसका तात्पर्य यह हुआ कि विद्वान् तो इस प्रकार के कार्य नहीं करेगा।

आप बाहर से बच रहे हैं और सत्ता भी बचने के लिये बाध्य कर रही है आप लोगों को, किन्तु आप पगडण्डी तो ढूँढ ही लेते हैं, इसलिये आप चोरी से

कहाँ तक इस रूप से कि भाव भी उत्पन्न न हों, बचते हैं? यह या तो भगवान् ही जानता है या आपकी आत्मा ही जानती है। महाराज! बिना चोरी के तो कार्य ही नहीं चल सकता, कई लोगों से सुना है मैंने ऐसा, दंग रह गया मैं। आप लोगों ने इसको इतना फैला दिया कि इसके बिना काम नहीं चलता, एक प्रकार से राजमार्ग पर ही रख दिया। 'उपर से तो आप कहते हैं कि चोरी करना पाप है और अन्दर क्या घटाटोप है, यह तो आप ही जानते हैं।'

एक समय की बात है। एक ब्राह्मण प्रतिदिन नदी पर स्नान करने जाया करता था। एक दिन उसकी पत्नी भी उसके साथ गयी। ब्राह्मण स्नान करने के बाद सूर्य के सामने खड़े होकर जल समर्पण करने लगा और मुख से उच्चारण करने लगा- 'जय हर हर महादेव, जय हर हर महादेव, और मन में है सो है ही।' 'जय हर हर महादेव' तो समझ में आ गया पर मन में है सो तो है ही सूत्र समझ में नहीं आया। पास ही स्नान करते हुये एक मित्र ने पूछा कि- भैया, आज आपने सूत्र बदल दिया, क्या बात है? कुछ खास नहीं भाई, मैं प्रतिदिन जय हर हर गंगे, हर हर गंगे कहता था, किन्तु आज मेरी पत्नी भी साथ में आयी है, पत्नी का नाम गंगा है, इसलिये आज कैसे कहूँ? अतः आज मैं कह रहा हूँ 'जय हर हर महादेव और मन में है सो है ही।'

इस प्रकार आप लोग भी राजकीयसत्ता से कहते हैं कि भई हम तो चोरी नहीं करेंगे, पर करे बिना भी नहीं रहें, क्योंकि 'मन में है सो है ही' भगवान् जानते हैं आपकी स्थिति को, आपकी इस लीला को किस प्रकार हृदय में घटाटोप हो रहा है। बाहर से तो आपने चोरी करना छोड़ दिया, बहुत अच्छा किया, पर अब अन्दर से भी छोड़ना आवश्यक है। अभी तक आप लोगों ने छोड़ा थोड़े ही है। हम दूसरे पदार्थ का ग्रहण कर भी नहीं सकते। अतः ऐसी स्थिति में उसका विमोचन भी नहीं कर सकते, ऐसी धारणा बन गई है लोगों की। पर जब वस्तु का परिणामन जानने में आ जायेगा, तब आप लोगों को विदित होगा कि वस्तुतः हम किसी को ग्रहण नहीं कर सकते, किन्तु भावों के माध्यम से ग्रहण किया जाता है।

जिस समय हम भावों का निर्माण करते हैं, उसी समय जो हमारा कर्म सिद्धान्त है, उसके अनुरूप कार्य

हुआ करता है, और वह एक बंधन हो जाता है। उस बंधन को हम लोग नहीं समझ पाते, इसलिये हम अपने आपको स्वतन्त्र अनुभव करना प्रारम्भ कर देते हैं, किन्तु जब वह वचन से व काय से क्रियान्वित हो जाता है, तब सोचते हैं कि कहीं जेल में बन्द न हो जायें।

‘राजकीयसत्ता वह सत्ता है जो आपके शरीर व वचन पर नियंत्रण रखती है और कर्मसिद्धान्त वह सत्ता है जो आपके भावों के बारे में देखती रहती है।’ इस प्रकार आत्मा को इन दो सत्ताओं के बीच में रहकर अपने आप को सही-सही साहूकार स्थापित करना है। जो ऐसा कर रहा है वह जिनेन्द्र भगवान् के मार्ग का प्रभावक है और साथ में अपनी आत्मा का भी उत्थान कर रहा है। बाहर व आभ्यन्तर ये दोनों कार्य अनिवार्य हैं। जब बाहर से भी जेल जाने से नहीं बच पाते तो, ऐसी स्थिति में अन्दर क्या होगा? जब तक अन्दर नहीं पहुँचगे, तब तक हमारी निधि क्या है? यह आप लोगों को विदित नहीं होगा।

एक व्यक्ति, जानता है कि कर्मसिद्धान्त क्या है और किस प्रकार मुझे आचरण करना है, किन्तु वस्तुस्थिति न समझने का परिणाम है कि वह इन दोनों सत्ताओं (राजकीय काम, कर्म) का उल्लंघन कर देता है। राजकीयसत्ता कानून के अनुरूप आपको कुछ समय के लिए या आजीवन जेल में रख सकती है, किन्तु वह कर्मसिद्धान्त? वहाँ पर भी कारा है? हाँ, वहाँ पर भी कारा है और यहाँ पर भी कारा है। जहाँ कहीं मलिन-भाव हैं वहीं पर कारा है और कारा में रहनेवाला व्यक्ति कौन होता है चोर? हाँ तो आप लोग भी कारा में हैं।

एक व्यक्ति ने कहा कि- महाराज! जयपुर आये हैं, तो एक प्रवचन कारागृह में भी दें, तो अच्छा होगा। तो क्या यह कारा नहीं है? संसार भी तो कारा है, यह देह भी तो एक कारा है, जो व्यक्ति इसको कारा नहीं समझता वह व्यक्ति महान भूल में है। मैं कैसे कहूँ कि मैं जेल में नहीं हूँ, क्योंकि यह देह भी तो जेल है, कारा है। आप मात्र राजकीय सत्ता जेल को ही जेल मानते हैं किन्तु वस्तुतः आत्मा के लिये विपरीत परिणाम ही जेल है और हमारी वस्तु है ‘आत्मतत्त्व’, उसका जो विपरीत विरूप परिणाम है, वही हम लोगों के लिये जेल बना हुआ है। वह सत्ता (आत्मा) हमें दिख नहीं पा रही और जब तक देखने में नहीं आयेगी, तब तक

वह लुटती चली जायेगी और हम उसको लुटाते चले जायेंगे। फलतः अपराधी बनते रहेंगे, दरिद्र बनते रहेंगे, दीन बनते रहेंगे और भटकते रहेंगे। ध्यान रहे, राजकीय सत्ता के माध्यम से जो चोर सिद्ध किया गया है, उस चोर की व्यवस्था राजकीय सत्ता करती है और करती आयी है, वह कम से कम दो समय खाना खिलाती है। मैं पूछता हूँ कि इस (देह की) कारा में जो अनादि काल से आत्मा बैठा है, इसके लिये क्या कोई ऐसी सत्ता है जो खाना खिला रही हो, पिला रही हो, अपनी खुराक दे रही हो? आत्मा को इस कारा से निवृत्त करने का प्रयास करें। महाराज! इसके लिये वकील भी तो चाहिये, फिर इसके लिये कोई कोर्ट भी तो चाहिये। हाँ, आप वकील के माध्यम से इस कारा से तो छूट सकते हो, सच-झूठ बोलकर छूट सकते हो, क्योंकि बहुमत का जमाना है, बहुमत हो जाये तो छूट जायेंगे और घूसखोरी हो जायेगी तो छूट जायेंगे, किन्तु यहाँ पर कोई वकालत करनेवाला नहीं है, स्वयं चोर को वकालत करना स्वीकार करना होगा।

वह आगे के लिये जब यह स्वीकृति ले लेता है, अपनी आत्मा से कि मैं अब चोरी नहीं करूँगा, तब तक यह छोड़ा नहीं जायेगा। ‘छूटे भव-भव जेल’, भव-भव में जो परिभ्रमण करना पड़ रहा है वह जेल है, विस्तृत जेल। एक संकीर्ण, जेल हुआ करती है और एक विस्तृत जेल। विस्तृत जेल में घूमने के लिये भी कुछ सुविधायें होती हैं, किन्तु रहेगा तो जेल में ही। ये चार प्रकार की गतियाँ, चार प्रकार के भव क्या जेल नहीं है? हम इस देहरूपी जेल में चोर के रूप में बैठकर भी दूसरे जेलवाले व्यक्तियों को (राजकीय सत्ता वाले कैदियों) जो कैदी हैं, उनको यदि उपदेश दें, तो एक चोर दूसरे चोर को कभी डाँट नहीं सकता। चोर-चोर को उपदेश नहीं दे सकता। वह कह सकता है कि आपसे अधिक शुद्धता पवित्रता मेरे पास है, इसलिये उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है।

हम अनादिकाल से अपराध करते आ रहे हैं, छूटने के भाव तो आज तक किसी ने किया ही नहीं। प्रत्येक समय गलितयाँ होती चली जा रही हैं, अपराध होता चला जा रहा है और स्थिति यह बन गयी है कि हम अपने आपको अपराधी हैं कि नहीं यह तक नहीं समझ पा रहे। इसमें एक कारण है कि जब तक अपराधी



एक रहता है, तब तक वह अनुभव करता है कि-हाँ मैं अपराधी हूँ, मैंने अपराध किया है, मैं उसका यह दण्ड भोग रहा हूँ। जब अपराधियों की संख्या बढ़ जाती है, तो फिर उसमें भी एक प्रकार का मजा आना प्रारम्भ हो जाता है, कुछ समय पूर्व सुना था कि सत्याग्रह करनेवाले चलाकर अपने आप को जेल में प्रविष्ट करा रहे हैं। केवल एक-दो व्यक्तियों को जेल में बंद करते, तो कोई जाने की होड़ नहीं करता, पर सब जा रहे हैं, तो शेष लोग सोचते हैं कि चलो वहाँ पर विशेष प्रबन्ध होगा। बहुमत के कारण हम अपने अपराध को भूलते जा रहे हैं, एक दूसरे के साथी बनते चले जा रहे हैं।

इस शरीर को कारा समझो। यहाँ पर आप (शरीर-वाले) बहुमत या बहुसंख्यक होने से 'स्वतन्त्रता का अनुभव कर रहे हैं। मुक्त जीवों की संख्या व संसारी जीवों की तुलना की जाये, तो संसारी जीवों की संख्या अधिक होगी। अतः साहूकार वे हैं कि आप हैं? सत्य की परिभाषा बहुमत के माध्यम से नहीं होती, साहूकार की परिभाषा बहुमत के माध्यम से नहीं बनती, एक के माध्यम से भी नहीं बनती, अपितु सत्य की परिभाषा भावों के ऊपर निर्धारित है। अतः अहर्निश अपने परिणामों को सुधारने का प्रयास करना चाहिये। लौकिक सत्ता के माध्यम से जो कुछ भी हमारी स्थिति सुधरती है उससे इंकार नहीं है, बाहरी स्थिति का कोई निषेध नहीं है, किन्तु इतना सा ही हम लोगों का धर्म नहीं है। इसके माध्यम से हम लोग एक ही भव में कुछ समय के लिये आनन्द देख सकते हैं, सुख देख सकते हैं, यश-ख्याति मिल सकती है, किन्तु जो विकारी परिणति है, उस परिणति को हटाये बिना हम भव-भव में आनन्द की अनुभूति नहीं कर सकते। जब यह भव-भ्रमण नहीं रहेगा तब आनन्द की अनुभूति होना प्रारम्भ हो जायेगी।

आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि चोर वह है जो 'पर' वस्तु का ग्रहण करने का संकल्प करता है, चाहे उसका संकल्प पूर्ण हो या न हो, उसके विचार साकार हों या न हों, वह वस्तुस्थिति को समझ नहीं रहा, इसलिये उसके विचार साकार नहीं होंगे कि- मैं इसको ग्रहण करूँ मैं उसको ग्रहण करूँ। प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है और उस अस्तित्व के ऊपर हमारा कोई अधिकार नहीं जम सकता, संसारीप्राणी के लिये यह

समझना आवश्यक है और आचार्य समझा रहे हैं- यह प्रयास करें कि यह जेल छूटे। हे प्रभु! हमारा यह जेल कब छूटेगा?

आप खुश हैं, हँसते हैं कि हम तो जेल में हैं ही नहीं और जो दूसरे (लौकिक) जेल में हैं, उनको देखकर हँसते हैं। पर बन्धुओ! यह जेल-जेल नहीं है, वह तो नकली, दिखावटी जेल है क्योंकि उसके परिणाम तो अभी भी स्वतन्त्र हैं, वह भाव के माध्यम से अभी भी चोरी कर रहा है। जेल में रहते हुये भी वह भावों के माध्यम से अपराधी है, उस जेल में मात्र शरीर के ऊपर अधिकार हुआ है, मात्र शरीर बंधन में है, किन्तु वह आत्मा अभी भी स्वतन्त्र नहीं है।

पराई वस्तु पर दृष्टि जाये भले ही, किन्तु वह दृष्टि पकड़ने की नहीं होनी चाहिए। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि दूसरे को पकड़ने के भाव ही नरक व दुःख हैं। जितना आप देखेंगे- जानेंगे उतना सुख व आनन्द बढ़ता जायेगा। विश्व को जानेगा तो और ज्यादा बढ़ेगा, इतना कि जिसकी कोई सीमा नहीं रहेगी, अनन्त जिसका कोई अन्त नहीं, जिसका कोई छोर नहीं, जिसका कभी अभाव नहीं, जिसमें किसी प्रकार की कमी नही आ सकती, ऐसा है वह अनन्त सुख। वह सुख कौन प्राप्त कर सकता है? उस सुख को वही प्राप्त कर सकता है, जो अपने आपको जितना जानेगा, जितना देखेगा। किन्तु कैसे देखेगा? कैसे जानेगा? कैसे पहचानेगा? अपने आप में होगा, तब अपने ऊपर अधिकार रखेगा, तब पहचानेगा, जानेगा, देखेगा।

**'सकल ज्ञेय ज्ञायक, तदपि निजानन्द रस लीन'**

विश्व को जाना, विश्व के ज्ञेयरूप पदार्थ को पहचाना, देखा, किन्तु आनन्द की अनुभूति विश्व में नहीं अपितु-'निजानन्द रसलीन' आप लोग सकल ज्ञेय ज्ञायक तो हैं ही नहीं, आपका ज्ञेय शकल है- शकल का अर्थ है टुकड़े, शकल का अर्थ है ऊपर का आकार इतना ही आप जानते हैं। आपका ज्ञान इतना सीमित है कि मात्र शकल को देख सकता है-

**'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, धनानन्द रस लीन'**

आप दूसरे पदार्थ में लीन हैं और समझ रहे हैं कि बहुत सुखी हो गये हैं, 'हम बहुत सन्तुष्ट हैं', बिल्कुल रामराज्य चल रहा है, भले ही अन्दर रावण का ताण्डव नृत्य हो रहा हो, पर बाहर से तो राम-राज्य चल रहा है।

यह वस्तुस्थिति के विपरीत श्रद्धान है। इसी से कहते हैं कि हमारी आत्मा लुटती जा रही है, सत्ता का विनाश होता चला जा रहा है, क्योंकि वहाँ पर सत्य का अभाव है। जो सत्य का अनुपालन करेगा वह स्तेय कर्म को नहीं अपनायेगा और जो स्तेय कर्म को अपनायेगा, वह सत्य का अनुपालन नहीं करेगा। यद्यपि इस वृत्तान्त में लौकिकता आ सकती है, किन्तु उस लौकिकता के माध्यम से उसे सिद्धान्त की ओर भी ग्रहण कर सकते हैं।

एक व्यक्ति रोगी था, रोग शरीर के अन्य किसी अंग में नहीं था, बल्कि मस्तिष्क में था। उसे बहुत नींद से पीड़ा थी। इलाज के लिये उसने बहुत सारा पैसा चोरी करके, अन्याय करके, एकत्रित किया और अस्पताल में भरती हो गया। जब उसके मस्तिष्क का ऑपरेशन ठीक-ठीक हो चुका, डॉक्टर ने अच्छा ऑपरेशन किया, शल्य चिकित्सा अच्छी हुई। इतना सब होने के उपरान्त उसका एक मित्र आया और पूछा कि- क्यों भैया! ठीक हो! उसने उत्तर दिया- हाँ, पहले से बहुत अच्छा हूँ, बहुत आराम है। कुछ दिन पश्चात् डॉक्टर कहता है कि एक गलती हो गयी, हमने ऑपरेशन तो कर दिया, पर मस्तिष्क को अपने स्थान पर नहीं रखा, वह बाहर ही मेज पर रह गया। रोगी कहता है कि कोई बात नहीं है, चिन्ता मत करो, क्योंकि मैं राजकीय नौकरी करता हूँ। वहाँ बिना मस्तिष्क के भी काम चल जायेगा।' इस दृष्टान्त को सुनकर मैंने सोचा कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हम सत्य को पा सकते हैं, पर चोरी क्या है ये भी हमको पता नहीं है, फिर भी हम दावा कर देते हैं कि हम चोर नहीं हैं। वे दोनों (डॉक्टर व मरीज) ही चोर हैं क्योंकि वह डॉक्टर भी राजकीय सेवा में है, वह भी अपना कार्य सुचारु रूप से नहीं करता। उसको जो एम.बी.बी.एस. की उपाधि मिली है, वह कभी भी समाप्त होनेवाली नहीं है। इसलिये व आजीवन डॉक्टर है, यह सिद्ध हो ही गया और रोगी भी राजकीय सेवा में है, वह भी सोचता है कि मुझे किसी प्रकार भी राजसत्ता निकाल तो सकती नहीं है, अब तो मैं पेंशन लेकर ही निकलूँगा। इसलिये दोनों को कार्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हम साहूकार हैं, सत्य हैं, कैसे कहते हैं? यह तो लौकिक बात है। इसी प्रकार हम समझ लेते

हैं कि (सिद्धान्त में भी) हम चोर नहीं हैं, क्योंकि यह सब कर्म की देन है। आत्मा तो साहूकार है, ज्ञायक है, शुद्ध पिण्ड, उसमें किसी प्रकार से पर का सद्भाव नहीं है और उसका पर में सद्भाव नहीं है, यह त्रैकालिक सत्य है। इस एक सूत्र को लेकर बैठ गये और अंधाधुंध चोरी भी करते हैं और बोलते हैं कि जो कुछ होता है, वह कर्म की देन है, आत्मा बिल्कुल अस्पृष्ट है, असंपृक्त है, आत्मा अपने से अन्य है, पर से अन्य है, पर का अपने में अपने का पर में किसी भी प्रकार से समावेश नहीं है। प्रत्येक के क्षेत्र भिन्न, प्रत्येक के काल भिन्न, प्रत्येक के द्रव्य भिन्न, प्रत्येक के स्वभाव भिन्न, सब भिन्न-भिन्न हैं, इस प्रकार माननेवाले हैं। क्या यह भाव सच्चाईयुक्त है? यह एक प्रकार से कायरता है। एक प्रकार से पुरुषार्थ-विमुख होना है।

ये डॉक्टर व रोगी दोनों अपने से भिन्न हैं, 'पर' में उनका जीवन चल रहा है। इस प्रकार का जीवन तो तिर्यचों में भी होता है। गाय, भैंस, कुत्ते, भी अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं। मात्र जीवन को चलाना नहीं है, जीवन अपने आप अनाहत चल रहा है। जीवन को उन्नति की ओर बढ़ाने को ही मानवजीवन की सफलता कहते हैं। साफल्य के अभाव में इस जीव को दुःख का अनुभव करना पड़ रहा है, फिर भी इसकी खुराक कुछ अलग है, उन्नति की खुराक कुछ अलग हुआ करती है। उन्नति के लिये कुछ प्रयास करना चाहिए। वह सत्य और 'अचौर्य' उन्नति की खुराक है जीवन की खुराक नहीं है। जीवन तो असत्य के साथ भी चल सकता है, जीवन चोरी के साथ भी चल सकता है, किन्तु वह जीवन, जीवन नहीं कहलायेगा, वह भटकन है। आप लोगों का भी यह जीवन, जीवन नहीं भटकन है क्योंकि सत्य के साथ, अचौर्य के साथ आपका संयोग नहीं है। तो फिर क्या करें हम? करने के लिये मैं क्या कहूँ? आपको यदि उन्नति चाहिये, विकास चाहिये, उत्थान चाहिये अपनी आत्मा का, तो आपको वीतरागता की अनुभूति करनी होगी, चाहे आज करो या कल, वीतरागता की अनुभूति किये बिना आप सर्वज्ञत्व को प्राप्त नहीं कर सकते और सर्वज्ञत्व के बिना अनन्त सुख का अनुभव नहीं कर सकते, संसार का अभाव नहीं हो सकता।

इस अनादिकालीन पीड़ा को मिटाना है। पीड़ा यह नहीं है कि भूख लग गई है, पीड़ा यह नहीं है

कि हमको धन नहीं मिला, वस्तुतः पीड़ा यह है कि हमारा ज्ञान अधूरा है, जबकि हम समझ रहे हैं कि हम पूर्ण हैं।

चोरी को तो आप छोड़ सकते हैं, किन्तु चोरी क्या है, पहले यह समझना परमावश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि मैं साहूकार हूँ। क्या चोरी के त्याग का संकल्प लिया है? नहीं, आवश्यकता भी क्या है? हाँ मन कह रहा है कि त्याग मत कर। इस सिद्धान्त को समझिये। अनादिकाल से यह परम्परा चल रही है, यह कोई नवीन परम्परा नहीं है, इस पर कुठाराघात करने के लिये आप उद्यत हो जाओ। यह व्रत एक बार में पूर्ण नहीं होगा, यह भी ध्यान रखना। इस पर बार-बार कुल्हाड़ियों से प्रहार करना आवश्यक है और जोर के साथ प्रहार करने की आवश्यकता है। पूरा दम लगाकर पटको उसके ऊपर कुल्हाड़ा तभी वह जड़/मूल से कट सकता है, क्योंकि यह बहुत दिन का संस्कार है।

पर के ऊपर ग्रहणभाव को लेकर जो हमारी दृष्टि हुई है, उसको आप एक साथ नहीं छोड़ सकेंगे, पर छोड़े बिना भी निस्तार नहीं है। तो क्या ये सब के सब चोर सिद्ध हो गये और यह चोर बाजार? मुझे ऐसा लगता है कि वर्तमान में इसलिए भगवान् महावीर यहाँ पर नहीं हैं क्योंकि एक चोरबाजार में यदि कोई साहूकार हो भी, तो उस साहूकार को भी चोर की ही उपाधि मिलेगी।

प्रत्येक व्यक्ति पर को चोर सिद्ध करता है और स्वयं को साहूकार सिद्ध करता है। 'चोर-चोर को डाँट नहीं सकता।' हाँ, एक चोर अपनी चोरी की गलती को पहचान करके उसको यदि छोड़ने का प्रयास कर रहा है, तो अब वह चोर नहीं है यह ध्यान रखना। आचार्य कहते हैं कि जिस समय जीव के चोरी के भाव रहते हैं, उसी समय जीव को चोर कहा जाता है, जिस समय भाव नहीं हैं, किन्तु चोरी छोड़ने के भाव हैं, उस समय साहूकार कहा जाता है, साहूकार कहा क्या जाता है, वह साहूकार है ही।

जो व्यक्ति अनागत में भी चोरी करना चाहते हैं, वे साहूकार न बनें हैं, न बनेंगे। अतीत में तो वह साहूकार था ही नहीं, इसको तो वह मंजूर कर लेता है और आगे के लिये वह प्रायश्चित्त करने को तैयार हो जाता है, तो वह साहूकार बन सकता है, किन्तु तब तक नहीं

बनेगा जब तक कि अपने संस्कारों को पूर्ण रूप से मिटा नहीं पायेगा। 'आप चोर से नहीं, चौर्य भाव से नफरत कीजिये, पापी से नहीं, पाप से घृणा कीजिये।'

पापी से मत पाप से, घृणा करो अथि आर्य।  
नर से नारायण बनो, समयोचित कर कार्य॥

अनादिकालीन चोरी का कार्य उसने किया (जीव ने) इसमें तो कोई सन्देह नहीं है, फिर भी वह त्रैकालिक संभव नहीं है कि जिसने आज तक चोरी की है, वह आगे भी चोरी का ही कार्य करता रहे। अज्ञान दशा में की है, कोई बात नहीं, किन्तु अब तो आँखें खुल गयीं, अब तो नींद खुल गयी, अब तो दृष्टि मिल गयी कि मेरा क्या कर्तव्य है? मुझे क्या करना है? जिस व्यक्ति को यह विदित हुआ, वह व्यक्ति स्वयंकृत अनर्थ को अनर्थ समझकर छोड़ देगा। उसको ऐसा ज्ञान मिला है, इसलिये अब चोरी से भी निवृत्ति लेनी है, किन्तु चोर से नहीं। वह चोर तब तक ही है, जब तक कि चोरी करता है। चोरी छोड़ देंगे तो साहूकार बन जायेंगे।

आप संसारी कब तक कहलायेंगे? जब तक ये कार्य करते रहेंगे, जब इनको छोड़ देंगे तो मुक्त कहलायेंगे, भगवान् कहलायेंगे, आप किसी को चोर मत कहिये। आचार्य कुन्द-कुन्द ने कहा है कि जिस व्यक्ति को आपने 'चोर' कहकर पुकारा वह व्यक्ति चोर है, आप बरसों तक उसे ऐसे ही पुकारते रहेंगे, तो ऐसी स्थिति में वह समझ लेगा कि मैं तो चोर हूँ ही, अब चोरी करने का भाव छूटे कैसे? इसलिये यदि चोर की चोरी छुड़ानी है, तो उसे चोर मत कहो, उसे समझाओं कि आपको यह कार्य ठीक नहीं है, आपका कर्तव्य तो अचौर्य है, तो अपने आप चोरी का त्याग हो जायेगा किन्तु हम तो डाँटते हैं दूसरों को कि तुम तो चोर हो, तुमको मालूम नहीं कि 'भगवान् महावीर का सिद्धान्त क्या है? प्रत्येक समय भावों का परिणमन हो रहा है। वर्तमान में भूत का भी अभाव है और भविष्य का भी अभाव है।' जब चोर को इस प्रकार डाँटा जा रहा है, तो वह इस समय चोरी के भाव नहीं छोड़ सकता, बल्कि आगे जाकर और भी बड़ा चोर बन सकता है। उसे सिद्धान्त समझाओ कि यह चोरी ठीक नहीं है।

आप आत्मा को ठीक नहीं मान रहे, किन्तु आत्मा तो ठीक है, आत्मा का परिणमन ठीक नहीं है, वह पापमय है। इसलिये भगवान् महावीर ने किसी को भी

चोर नहीं कहा, अपितु प्रत्येक व्यक्ति को कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति मे प्रभुत्व छिपा है, जैसा मैं उज्ज्वल हूँ, वैसे ही आप भी उज्ज्वल हैं, मात्र एक राग का आवरण है। वह (आत्मा) मणि है, रत्न है, हीरा है, किन्तु स्फटिक मणि धूल में गिरी हुई है, उसे धूल से बाहर उठा दो वह चमकती हुई नजर आयेगी। इसीलिये किसी को चोर मत कहो। दूसरी बात यह है कि हमारा अधिकार ही क्या है दूसरे को चोर कहने का, जब तक हम स्वयं साहूकार नहीं बनेंगे, तब तक दूसरे को चोर सिद्ध करने का क्या अधिकार? तब यह सारी लौकिक व्यवस्था फेल हो जायेगी। मैं फेल करने के लिये नहीं कह रहा हूँ बल्कि अपने आपको पूर्ण साहूकार सिद्ध करने के लिये कह रहा हूँ। आप पूर्ण साहूकार बनो। बाहर से तो आप साहूकार बन जाते हो, किन्तु अन्दर आत्मा में घटाटोप है चोरीपन का।

जब यह रहस्य एक राजा को विदित हुआ, तो वह राजा अपनी सारी सम्पदा व परिवार को छोड़कर जंगल का रास्ता ले लेता है। किसी से कुछ नहीं बोलता, बस कदम आगे बढ़ते चले गये जंगल की ओर, भयानक जंगल की ओर जहाँ निर्जनता तो है ही, साथ ही पाशाविकता भी बहुत है, जहाँ हिंसक पशुओं का राज्य है, वे वहाँ पर चले गये और आत्मलीन हो गये, इतने लीन हो गये कि अपने आपको भी भूलते चले गये। जो ग्रहण का भाव था मन में, वह तो सब राजकीय सत्ता में छोड़कर आ गये थे, अब असंपृक्त हैं। बहुत दिन व्यतीत हो गये, तब परिवार के लोगों में उनके दर्शन करने के भाव जागृत हुये और वे चल पड़े उन्हें ढूँढने। चलते-चलते आगे रास्ता बहुत संकीर्ण होता गया, इतना संकीर्ण कि मात्र पगडण्डी के अलावा कुछ था ही नहीं, बहुत विकट, पर दर्शन तो करने हैं। माँ कहती है कि मेरा बेटा कितना सुकुमार था? आज तो उसके दर्शन करना है। पत्नी सोचती है कि आज मुझे अपने पतिदेव के दर्शन करने हैं। अभी उसकी दृष्टि में वे पतिदेव ही थे, मुनि महाराज नहीं थे। सब चले जा रहे हैं, क्योंकि संकल्प कर लिया है कि आज तो दर्शन करना ही है। बढ़े चले जा रहे थे सब, आगे रास्ते में दो मार्ग थे, अब किधर बढ़ें? एक मार्ग पर चल पड़े, चलते-चलते मिल गये मुनि महाराज! देखते ही बहुत उल्लास हुआ। बीते दिनों की स्मृति हो आई। पत्नी सोचती है कि देखो

वे ही राजा, वही पतिदेव, वही तो है सब कुछ, पर ये सब को छोड़ आये हैं। खैर कोई बात नहीं, जीवित तो हैं, यही बहुत अच्छा है। माँ सोचती है मेरा लड़का अच्छा कार्य कर रहा है और वह माँ प्रणिपात हो जाती है चरणों में, पत्नी भी प्रणिपात हो जाती है। मुनि महाराज ने सब आगन्तुकों को समान दृष्टि से देखा। परिवारजनों में अब एक और इच्छा हो गयी कि अब ये बोलेंगे कुछ, मुख खोलेंगे। पर वे बोले नहीं, अब मात्र निहारना रह गया था। उन लोगों ने सोचा कि कोई बात नहीं, मौन होगा। ऐसा विचार कर वे 'नमोऽस्तु' कहकर वापिस चलने को उद्यत हुये। पर आगे रास्ता बहुत विकट और धुँधला-धुँधला सा दिख रहा था। माँ बोली- महाराज! आप मोक्षमार्ग के नेता हैं, 'मोक्षमार्गस्यनेतारं', मोक्षमार्ग को बतानेवाले हैं, तो संसार-मार्ग तो बता ही दीजिये, केवल यह बता दें कि यह रास्ता ठीक रहेगा कि नहीं? महाराज क्या कहें? दुविधा में पड़ गये। महाराज मौन ही रहे। माँ बोली-महाराज! मौन हो तो सिर्फ इशारा ही कर दो। महाराज अचल बैठे रहे। मौन मुद्रा देखकर माँ ने सोचा कोई बात नहीं, यही मार्ग ठीक दिखता है, चलो इधर ही चलें और वे चले गये। कुछ दूर बढ़ने के उपरान्त एक चुंगी-चौकी थी, वह डाकुओं के रहने का स्थान बन गया था। रास्ते में जो कोई भी आता था, वे उसे लूट लेते थे। उन राज परिवारवालों को देखकर डाकुओं ने कहा कि जो कुछ भी तुम्हारे पास है, वह रखते जाओ। वह माँ, पत्नी, लड़का, सभी दंग रह गये, घबरा गये। माँ बोली- ओफ ओह! अन्याय हो गया। अब यह पृथ्वी टिक नहीं सकेगी, अब इसकी गति पाताल की ओर हो जायेगी, यह आसमान फट जायेगा। अब जीवन में न्याय ही न रहा। अब कहीं भी धर्म नहीं मिलेगा। अब कहीं भी शरण नहीं है। हमने तो सोचा था- हमारा लड़का तीन लोक का नाथ बनने जा रहा है, वह मार्ग प्रशस्त करेगा, आदर्श मार्ग प्रस्तुत करेगा, दयाभाव दिखायेगा, पर वह इतना निर्दयी निकला कि यह भी न कहा कि इस रास्ते से मत जाओ, आगे डाकुओं का दल है। ओफ ओह, काहे का धर्म, काहे का कर्म? धिक्कार है उस बच्चे को। अब भी बच्चा कह रही है, मुनि महाराज नहीं कह रही है। अभी लड़का है, ज्ञान तो है नहीं, उसे तो यह भी मालूम नहीं कि दया करनी चाहिए। दयाभाव जिसके पास नहीं है, वह क्या

तीन लोक का नाथ बनेगा? जो अपनी माँ को भी, जिसने नौ माह तक अपनी कोख में रखा, प्रसूति-पीड़ा सहन की और जन्म दिया, बहुत सारी रातों बिना नींद के काटीं, इतने उपकारों का उसने कुछ भी प्रतिदान नहीं दिया। जिसने माँ के ऊपर थोड़ी सी भी एहसान की बुद्धि, करुणा बुद्धि नहीं रखी, वह क्या तीन लोक के ऊपर करुणा कर सकता है? यह बात सत्य है कि संसार में कोई किसी का नहीं है। वह सरदार सुनता है और शिष्यों से कहता है- इसे मत छोड़ो। इसकी बातें सुनने दो। जब वह सुनाना बन्द कर देती है, तब वह सरदार पूछता है कि माँ तू क्या कह रही है? ये अभिशाप किसको दे रही है? माँ कहती है- मैं आपके लिये नहीं कह रही थी, मैं तो उसके लिये कर रही हूँ, उसको दुत्कार रही हूँ, जिसको मैंने जन्म दिया है। इसलिये अपने जीवन को भी धिक्कारती हूँ। सरदार ने कहा- पर यहाँ तो कोई है ही नहीं, तुम कह किसके लिये रही हो? माँ कहती है- यहाँ से कुछ दूर बैठा है न वह नग्न। वही था मेरा लड़का, अब मैं लड़का भी नहीं कह सकती, वह बहुत दुष्ट है। घर छोड़कर यहाँ भाग आया। जब तक घर पर था, प्रजा की रक्षा करता था, यहाँ पर आ गया तो माँ को भी भूल गया, माँ के ऊपर थोड़ी सी भी उपकार की दृष्टि नहीं की, एक बोल तक नहीं बोला वह। सरदार ने कहा- समझ गया हम पाँच सौ डाकू भी अभी उसी रास्ते आये थे, उसके पास कुछ नहीं मिला, तो उसको पत्थर मारकर, नंगा कह कर चले आये। उस समय भी उसके मुख से वचन नहीं निकले थे। माँ ने कहा- अच्छा! उस समय भी कुछ नहीं बोला, आपके साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया? सरदार बोला- मुझे तो वह बहुत पहुँचा हुआ व्यक्ति दीख रहा है, क्योंकि माँ को समझ करके माँ के लिये कुछ भी नहीं कहा। हमने गाली दी थी, पर आपने तो प्रणाम किया था उनके चरणों में, फिर भी हमारे लिये कोई अभिशाप नहीं था और आपके लिये कोई वरदान नहीं। ऐसे व्यक्ति का मैं अवश्य दर्शन करूँगा। यह कहकर वह सरदार पहले माँ के चरण छू लेता है। धन्य हो माँ! जो तुम्हारी कोख से इस प्रकार का पुत्रत्न उत्पन्न हुआ, जिस व्यक्ति की दृष्टि में संसार समान है। जिस व्यक्ति की दृष्टि में समानता आ जाती है, वह व्यक्ति सामनेवाले वैषम्य को भी श्रद्धा के रूप

में परिणत करा देता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। वह पाँच सौ डाकूओं को लेकर मुनिराज के पास चला जाता है और नतमस्तक हो जाता है, 'बस मुझे भी अपना चेला बना लीजिये और उन डाकूओं का, एक साथ उनके चरणों में समर्पण हो गया।'

डाकू व लड़ाकू बहुत किस्म के हुआ करते हैं, किन्तु जब वे रहस्य को समझ लेते हैं, तो उस डाकूपन को छोड़ देते हैं और वह माँ, जो बहुत धार्मिक बातें सुनती थी, सोचती है कि मुनिराज की दृष्टि में सब समान थे। यदि वे उस समय मुझे रास्ता बता देते, तो ये पाँच सौ मनुष्य (डाकूओं का दल) दिगम्बरी दीक्षा नहीं ले सकते थे।

उनका वह मौन, उनकी वह समता क्या दया का निषेध कर रही थी? क्या क्रूरता का समर्थन कर रही थी? नहीं, वह क्रूरता का समर्थन था, न किसी का आदर भाव, अपितु वह समता मुझे तो वस्तुस्थिति बता रही थी।

सर्वार्थसिद्धि में आचार्य श्री पूज्यपाद लिखते हैं कि वह नग्न दिगम्बर मुद्रा ही पर्याप्त है विश्व के लिये, वह सही-सही रास्ता बता सकती है, किन्तु उस नग्न मुद्रा में समता की छटायें अवश्य आनी चाहिये। चोर व साहूकार सब के प्रति समान भाव जागृत होना चाहिए। अन्दर वही आत्मा है, वही चेतन है, वही सत्ता है, जो भगवान् के समान है, यह ऊपर का आवरण उतर जाये तो अन्दर वही आत्मा है। राख में छिपी हुई, राख में दबी हुई ज्वाला के समान, बाहर राख है किन्तु उसको फूँक मार दो, अन्दर वही उजाला, वही उष्णता है जो तीन लोक को प्रकाशित कर सकती है, वैकारिक परिणामों को समाप्त कर सकती है। समझने की बात यह है कि यह हुई 'उन मुनिराज की समता, माँ की ममता और उन डाकूओं की क्षमता, जिन्होंने अपने जीवन भर के लिये डाकूपन की तिलांजलि दे दी।'

अब मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि इन सामने बैठे डाकूओं का आत्म-समर्पण कब होगा? एक भवन में रहकर भी डाकू बन रहा है और एक जंगल में रहकर भी डाकूपन छोड़ देता है। मैं किसको कहूँ डाकू, किसको कहूँ लड़ाकू और किसको कहूँ आत्मदृष्टि रखनेवाला व्यक्ति? मैं कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु मात्र एक सूचना तो आप लोगों को दे सकता हूँ कि यह संसार

असार है, इसमें जब तक समता की दृष्टि नहीं आयेगी बन्धुओ, हमारे सामने चाहे महावीर भगवान् भी आ जायें तो भी हम उनको पहचान नहीं पायेंगे, क्योंकि राग की दृष्टि, द्वेष की दृष्टि वीतरागता को ग्रहण नहीं कर सकती, उसकी दृष्टि में वीतरागता भी राग है और जिस व्यक्ति की दृष्टि वीतराग बन गई उस व्यक्ति की दृष्टि में राग भी वीतरागता में ढल जाता है।

संसारी जीव यद्यपि पतित है, पावन नहीं है, लेकिन पावन बनने की क्षमता रखता है, जिससे हमारे में इतनी सहिष्णुता आ जाये कि चोर को भी चोर न कहें, डाँटे नहीं, किन्तु डाँटते हुये भी उसे साहूकार बनने का शिक्षण तो दें ही। आप डॉयरेक्ट डाँटने न लग जायें, वह समता दृष्टि अपने अन्दर आ जाये, जिससे हमारी परिणति उज्ज्वल हो, हमारी परिणति इतनी सुन्दर हो कि जगत को भी वह सुन्दर बना सके और उस सुन्दरता का दिग्दर्शन

करके प्रत्येक व्यक्ति कुछ आदर्श धारण कर सके। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके लिये पुरुषार्थ आपेक्षित है इसके लिये त्याग आपेक्षित है, इसके लिये सहिष्णुता की आवश्यकता है, संयम व तप की आवश्यकता है, किन्तु लक्ष्य हो वीतराग-दृष्टि का। यह है अस्तेय महाव्रत जिसमें चोर को चोर भी नहीं कहा। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि जो चोर को चोर कहता है, वह भी बड़ा चोर है। साहूकारी सिखाना ही एक मात्र अचौर्य महाव्रत है-

निन्दा करे स्तुति करे तलवार मारे,  
या आरती मणिमयी सहसा उतारे।  
साधु तथापि मन में समभाव धारे,  
बैरी सहोदर जिन्हें इक सार सारे॥  
भगवान् महावीर स्वामी की जय!

'चरण आचरण की ओर' से साभार

## अनपढ़ बहू और शिक्षित सास

एक परिवार में तीन ही सदस्य थे- पति-पत्नी और उन का एक बेटा। जवान होने पर धूमधाम से बेटे का विवाह कर दिया गया। बहू घर में आई। वह देखने में बहुत सुंदर थी। बोलती भी बहुत मीठी थी, पर अपढ़ थी। अपढ़ ही नहीं, ना समझ भी थी।

एक दिन पड़ोस में किसी के यहाँ मौत हो गयी थी। सास किसी कार्य में व्यस्त थी। उसने बहू को भेजा वहाँ सान्त्वना देने के लिए। बहू वहाँ गयी और शाब्दिक सान्त्वना देकर आ गई। उसने न दुःख व्यक्त किया और न वह रोई। सास ने कहा/ समझाया कि वहाँ रोना आवश्यक था बहू।

योग की बात है अचानक दूसरे ही दिन पड़ोस के एक अन्य घर में पुत्र का जन्म हुआ। सास ने फिर बहू को वहाँ भेजा। सास के बताये अनुसार वहाँ पहुँचते ही बहू ने रोना शुरू कर दिया। कुछ देर रोती रही। पश्चात् अपने घर लौट आई। घर लौटी तो सास के पूछने पर उसने सास को बताया कि आपके कहे अनुसार मैंने वहाँ जाते ही रोना शुरू कर दिया था।

सास ने बहू को फिर समझाया 'क्या करती हो? बहू वहाँ तो तुझे प्रसन्न होकर गीत गाना चाहिए था, अब आगे ध्यान रखना।' बहू ने सास की यह बात भी बड़े ध्यान से सुनी। फिर एक दिन की बात है, वह बहू ऐसे घर में गयी जहाँ आग लग गई थी। उसने सास के कहे अनुसार वहाँ गीत गाये और प्रसन्नता व्यक्त की।

अनपढ़ बहू के समयोचित कार्य न करने से उसके कार्यों की सभी ने निन्दा की। वह सर्वत्र हँसी की पात्र बनी। आवश्यक कार्यों को समयोचित करने के लिये बुद्धिमत्ता आवश्यक है। विवेक और बुद्धि के अभाव में ऐसी ही दशा हर अज्ञानी की है। आवश्यक कार्य करना नहीं और वासना का दास बना रहता है। आवश्यक कार्य है- मन और इन्द्रियों को समय पर (विषयों के आधीन होते समय) वश में करना। जो ऐसा नहीं करते, महर्षि उनके क्रिया कलाप देखकर हँसते हैं।

संकलन- सुशीला पाटनी  
आर. के. हाऊस, मदनगंज-किशनगढ़

# केरल में जैन धर्म

मुनि श्री अभयसागर जी  
(आचार्य श्री विद्यासागर जी -संघस्थ)

भारतीय संस्कृति की अभिवृद्धि में जैन संस्कृति का बहुमूल्य योगदान प्राचीन काल से ही रहा है। मंदिर, मूर्ति, स्थापत्यकला आदि के सर्वांगीण विकास में जैनश्रमण परम्परा का प्रभूत स्थान/योगदान है। तत्सम्बन्धी प्रमाण कश्मीर से केरल तक आज भी उपलब्ध हैं। सुदूर दक्षिण स्थित केरल प्रान्त में समय-समय पर श्रमणपरम्परा के द्वारा स्थापित बस्ती (मंदिर) अनेक स्थानों पर अवस्थित हैं और अनेक स्थलों पर स्थापित होने के प्रमाण दान-शासन रूप शिलालेखों पर उत्कीर्णत हैं।

'केरल में जैनधर्म : एक अध्ययन' (केरलदल्ली जैनधर्म : वन्दु अध्ययन) कन्नड़ भाषा की (डॉ. पी.डी. पद्मकुमार वी.व्ही.एससी., ए.एच., एम.ए. जैनालॉजी एण्ड प्राकृत, निवृत्तमान निदेशक-पशु वैद्य सेवा इलाके, नं. 1476, 'तीर्थकर', सी एण्ड डी ब्लाक, पूर्णहृष्टि रोड, कुवेम्पुनगर, मैसूर- 570023, कर्नाटक, फोन- 0821-2541672, मो. 098459-30542, प्रकाशक-कनगिरि प्रकाशन, कनकगिरि-571 128, जिला-चामराज नगर, कर्नाटक, प्रथम संस्करण-2006 मूल्य-75/- पृ.8+72+12) पुस्तक में प्राचीन समय में अनेक राजवंशों, श्रावकों आदि द्वारा स्थापित मंदिर, मूर्तियों आदि सम्बन्धी विस्तृत परिचयात्मक एवं गवेषणामूलक जानकारियाँ संकलित हैं। इसी प्रकार से 'Jainism In Kerala' नामक अंग्रेजी भाषा में व्ही. व्ही. जिनेन्द्र प्रसाद, वायनाड, केरल (मो. 094478-49518) द्वारा सन् 2002 में प्रकाशित एक अन्य पुस्तक में भी एतद्-विषयक परिचय के सूत्र प्राप्त होते हैं।

डॉ. पी.डी. पद्मकुमार द्वारा 33 कन्नड़ व 46 अंग्रेजी सन्दर्भ-पुस्तकों के आधार से लिखित उक्त पुस्तक में 15 स्थानों पर अवस्थित जिनमंदिर एवं उनमें स्थापित जिनबिम्बों के चित्रों का अवलोकन करने से यह भलीभाँति विदित होता है कि केरल प्रान्त में आज भी जैनधर्म के उपासक श्रावकों द्वारा जिनसंस्कृति के गौरव को सुरक्षित रखा गया है। केरल प्रान्त के वर्तमान 14 जिलों में से 8 जिलों में तथा तमिलनाडु प्रान्त के कन्याकुमारी जिले में, जो पूर्व में कभी केरल स्टेट से सम्बद्ध था, ऐसे कुल 9 जिलों में 33 जैन मंदिरों के उल्लेख मिलते हैं। उनमें से कुछ में वर्तमान में जैन श्रावकों द्वारा विधिवत्

पूजा-अर्चना सम्पन्न हो रही है, कुछ बसदि (जिन मंदिर) जीर्ण-शीर्ण हो चुके हैं। किन्हीं में से प्रतिमाएँ स्थानान्तरित होकर म्यूजियम में स्थापित की जा चुकी हैं, तो कुछ श्वेताम्बर एवं जैनेतर धर्मावलम्बियों द्वारा परिवर्तित हो चुके हैं। इन सभी मंदिरों के विस्तृत परिचय प्राप्ति हेतु उक्त दोनों पुस्तकें अवलोकनीय हैं।

केरल प्रान्त में जैन बसदि ( मन्दिरों ) की अवस्थिति

(A) कासरगोडे ( Kasaragode, पिन कोड-670 121 )  
जिले में स्थित जैन मन्दिर

1. चतुर्मुख बसदि, भंग्रमंजेश्वर (मंगलूर-कर्नाटक से 25 कि.मी. दक्षिण में)।
2. पार्श्वनाथ स्वामी बसदि, मंजेश्वर (Manjeshwar-670 323) यह मंजेश्वर से आधा कि. मी. पर जीर्ण अवस्था में स्थित है।

(B) कन्नूर ( Kannur—670 001/ कण्णानूर-  
Cannaanare ) जिले में स्थित जैन मंदिर

3. तलक्काड बसदि।
4. तिरुक्कुन्नावे जैन बसदि (वर्तमान में शिवालय)।

(C) वयनाड ( Wayanad ) जिले में स्थित जैन मंदिर

5. अनन्तनाथ स्वामी बसदि, वरदूर (Varaduru)
6. सुलतान बत्तेरी बसदि, किडंगनाडु (Kidanganadu)
7. यडक्कल गुहान्तर देवालय (सुलतान बत्तेरी बसदि के निकट, अम्बडवायल रोड, यडक्कल गुड्डे Yadakkala Gudde)।
8. चन्द्रनाथ बसदि, (पनमरम् नदी के पास) पुत्तंगाडी (Puttungadi)।
9. आदीश्वर स्वामी बसदि, मानन्दवाडी (Manandwadi)।  
आदीश्वर स्वामी बसदि, (मानन्दवाडी से 8 कि.मी. दूर), पुतियडम। (Putiyadam)
10. शान्तिनाथ बसदि, बेण्णगुडु (Bennagudu) कम्बडकाटु मार्केट से 8 कि.मी. दूर, जैन स्ट्रीट।
11. पार्श्वनाथ स्वामी बसदि, पालुकुन्नु (Palukunnu)। यह अंजुकुन्नु से 6 कि. मी. पर मानन्दवाडी कलवेट्टा मेन रोड पर है।  
पार्श्वनाथ स्वामी बसदि, अंजुकुन्नु (Anjukunnu)।

12. अनन्तनाथ स्वामी बसदि, अनन्तकृष्णपुरम्, पुडियारमल अध्यक्ष- एम. पी. वीरेन्द्रकुमार, (पूर्व केन्द्रीय मंत्री)।  
सांसद- कालीकट, जनता दल - एस., 27 केनिंग लेन, नई दिल्ली-110 003।  
फोन- (011-24672324, 23715386, मो. 98681-80585, 98470-60703)।  
स्थानीय पता- आनन्द मन्दिरम्, पुल्लियामाला, नाथ केलपट्टा, वायनाड, केरल फोन- (04936) 202484, (0495) 2301393।
13. कन्नडी बसदि (सुन्दर काँच का मंदिर), क्वट्टमण्ड।
14. चन्द्रनाथगिरि बसदि, कलबेट्टा नगर के पास, मैलाडीपार।
15. तिरुनैल्ली देवालय (वर्तमान में विष्णु मंदिर)।
- (D) कोजीकोड जिला (Kozhikode- 673001/ Kalicut)
16. पुन्नवयल्ल कोट्टम, कोडंगलूर- Kodangalur से 5 मील दूर, वर्तमान में मूर्तियाँ म्यूजियम में स्थित।
17. श्वेताम्बर जैन बसदि, पुन्नवयल्ल कोट्टम, पूर्व में दिगम्बर जैन मंदिर, वर्तमान में परिवर्तित होकर श्वेताम्बर जैन मंदिर।
- (E) पालकाड जिला (Palakkad- 678 001)
18. चिम्बचाल जैन बसदि (आलथूर-Alathur- 678541 के निकट)।
19. पल्लीकुलम् परम्बुविन बसदि (चिम्बचाल जैन बसदि से 7 कि. मी. पर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में स्थित)।
20. चन्द्रनाथ बसदि, जैन मेडू, पालकाट के निकट, चिम्बचाल बसदि से 22 कि.मी. पर स्थित।
21. आलथूर जैन बसदि (गोदापुरम् मन्दिर), आलथूर-Alathur- 678541।
22. ईश्वरन्नकोडु बसदि, वर्तमान में शेक्यीयार भगवती मंदिर के रूप में। पालकाड-Palakkad से 18 कि. मी.।
- (F) त्रिचूर जिला (Thrissur- 680 020)
23. चन्द्रप्रभस्वामी बसदि, पेरुवासेरी (वर्तमान में दुर्गा मंदिर के रूप में स्थित)।
24. भरत स्वामी बसदि, इरिन्जालकुड (Irinjalakuda- 680 121) वर्तमान में परिवर्तित होकर अयप्पा-स्वामी-मंदिर के रूप में।
- (G) यरनाकुलम् जिला
25. कलिल्लल्ल भगवती क्षेत्र (पूर्व में दिगम्बर जैन क्षेत्र, जहाँ हिन्दू भी पूजा हेतु आते थे। वर्तमान में श्वेताम्बर मंदिर)।
26. पुगनूरुगिरि धाम।
27. मट्टानचेरि बसदि।
- (H) इडुक्की जिला
28. त्रिमूर्ति बेट्ट।
- (I) कन्याकुमारी जिला (Kanyakumari- 629702, Tamilnadu)
- नोट- पूर्व में यह जिला केरल स्टेट के अन्तर्गत था। वर्तमान में यह तमिलनाडु राज्य के अन्तर्गत है।
29. नागराज स्वामी क्षेत्र, नागरकोइल 16वीं शताब्दी के पश्चात् हिन्दू मंदिर में परिवर्तित।
30. क्वट्टुरु जैन बसदि।
31. तिरुकारन्नत्तूमलै।
32. चित्तराल भगवती देवालय, चित्तराल, तालुका-विलवन्नकोडु।
33. सुचीन्द्र क्षेत्र (1008 खंबेवाला जैन मंदिर 13 वीं शती तक, अब भगवती मंदिर के रूप में शैव / वैष्णव मंदिर के रूप में प्रसिद्ध)।  
इन जिलों के अतिरिक्त केरल राज्य के कोट्टायम्, आलप्पुड, पत्तनत्तिट, कोल्लम् एवं तिरुवनन्तपुरम् जिले भी हैं, किन्तु उनमें जैन मंदिर नहीं हैं।

प्रस्तुति-पवन कुमार जैन  
नागपुर (महाराष्ट्र)

### ‘श्रुताराधना’ प्रकाशित

गतवर्ष कुण्डलपुर में सम्पन्न श्रुताराधना शिविर में प. पू. आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा विद्वहर्ग को प्रदत्त समाधानपरक उद्बोधनों की पुस्तक “श्रुताराधना” प्रकाशित हो गई है। स्वाध्यायशील बंधु अपना पता लिखकर पुस्तक मँगवा लें।

मूलचन्द्र लुहाड़िया, जयपुर रोड, पो. मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) 305801



# मन स्थिर करने का उपाय : स्वाध्यायः परमं तपः

आर्यिका श्री सुप्रभावती जी  
(आर्यिका इन्दुमती जी संघस्था)

विश्व के सारे प्राणी शांति और सुख चाहते हैं रात-दिन शांति की खोज में लगे हुये हैं, लेकिन इस वैज्ञानिक युग में मानव का जीवन यंत्र के समान बन रहा है। एक क्षणमात्र भी शांति नहीं। वास्तविक शांति-अशांति का स्रोत स्थिर-अस्थिर चित्त में है, मनोमर्कट को वश में करने के लिए इस काल में स्वाध्याय के बराबर दूसरा कोई तप नहीं। अध्यात्म-उन्नति का साधन एक स्वाध्याय ही है, इससे वस्तुस्वरूप की प्राप्ति होती है, उसी तरह आत्मानुभूति की प्राप्ति होती है।

अस्थिर मन अशांति का कारण है, मन की अशांति से व्यावहारिक कार्य में भी सफलता नहीं मिलती। अतः अशान्त मन शास्त्राभ्यास से स्थिर होगा ऐसा आत्मानु-शासन में कहा है-

अनेकान्तात्मार्थप्रसवफलभारातिविनते,  
वचःपर्णाकीर्णो विपुलनयशाखाशतयुते।  
समुत्तुंगे सम्यक्प्रततमतिमूले प्रतिदिनं,  
श्रुतस्कंधे श्रीमान् रमयतु मनोमर्कटममुम्॥

अनेकांतात्मक फलफूल के भार से अत्यन्त झुके हुये, स्याद्वादरूपी पत्तों से व्याप्त विपुलनयरूपी सैकड़ों शाखाओं युक्त, अत्यन्त विस्तृत श्रुतस्कंध में अपने मन रूपी बन्दर को रमाना चाहिए।

सत्त्वरूपणा (षट्खण्डागम) में श्लोक नं. ४७ में आचार्यों ने कहा ही है कि जिन्होंने सिद्धान्त का उत्तम प्रकार से अभ्यास किया है, ऐसे पुरुषों का ज्ञान सूर्य की किरणों के समान-निर्मल होता है, और जिन्होंने अपने चित्त को स्वाधीन किया है, वह चंद्रमा के समान उज्वल होता है और परमागम के अभ्यास से मेरु के समान निष्कम्प अनुपम सम्यग्दर्शन भी होता है।

बुद्धि का फल आत्महित है, स्वाध्याय से आत्महित होता है, निरन्तर भटकनेवाला मन स्वाध्याय से स्थिर होता है।

'स्वाध्याय' - 'स्व' अर्थात् अपने स्वरूप का अध्ययन करना या 'सु' सम्यक् रीत्या 'आ' समन्तात् अधीयते इति स्वाध्यायः।

"सुष्ठु प्रज्ञातिशयार्थं, प्रशस्ताध्यवसायार्थं, परम-संवेगार्थं, तपोवृद्ध्यर्थं अतिचारविशुद्ध्यर्थं अधीयते ह्यात्मतत्त्वं जिन-वचने इति वा स्वाध्यायः" बुद्धि बढ़ाने के लिये, प्रशस्त व्यवसाय के लिये, परमसंवेग के लिये, तपवृद्धि के लिये आत्मतत्त्व का या जिनवचन का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है।

स्वाध्याय का महत्व

स्वाध्यायेन समं किञ्चिन्न कर्मक्षपणं क्षमं,  
यस्य संयोगमात्रेण नरो मुच्यते कर्मणा।  
प्रशस्ताध्यवसायस्य स्वाध्यायो वृद्धिकारणम्,  
तेनेह प्राणिनां निन्द्यं संचितं कर्म नश्यति॥

संचित कर्मों का नाश स्वाध्याय से होता है।

स्वाध्याय रत्नत्रय का मूल है

स्वाध्यायाज्जायते ज्ञानं ज्ञानात्तत्त्वार्थसंग्रहः।  
तत्त्वार्थसंग्रहादेव श्रद्धानं तत्त्वगोचरम्॥  
तन्मध्येकगतं पूतं तदाराधनलक्षणम्।  
चारित्रं जायते तस्मिन्त्रयीमूलमथ मतम्॥

(सिद्धान्तसार, अ. ११-२१,२२)

'स्वाध्याय से ज्ञान होता है, ज्ञान से जीवादि तत्त्वों का संग्रह होता है, तत्त्वसंग्रह से श्रद्धान होता है, ज्ञान होता है, ज्ञान से चारित्र होता है।' स्वाध्याय संसारसमुद्र पार करने के लिए निश्छिद्र नौका के समान है, कषायरूपी अटवी को जलाने के लिए दावानल है, स्वानुभूतिरूप समुद्र की वृद्धि के लिए पूर्णिमा का चन्द्रमा है। जिनसूत्र पढ़ने से मानव के हृदय में सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होता है, जिससे मिथ्यात्वरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। स्व-पर भेदरूपी विज्ञान सर्वत्र फैल जाता है, जिससे भव्यजन का चित्तकमल विकसित होता है।

इस कलिकाल में जहाँ प्रत्येक मानव अन्न का कीट बना हुआ है, अन्न को ही अपना प्राण मान रहा है, ऐसे जीवों का कल्याण करने के लिए स्वाध्याय ही परम तप है यह बुद्धिवन्त आचार्यों का कथन है, क्योंकि जिनको रात-दिन का भेद नहीं, हेयोपादेय का ज्ञान नहीं, जिनकी शुद्धाशुद्ध की भावना दूर हुई, मिला सो खाया, जब चाहे जैसा-जो मिला पिया, उनके विचारों में किसी

प्रकार का भेदभाव नहीं रहा, पंचेन्द्रिय विषयों की वासना या उनकी पूर्ति में अपना अमूल्य जीवन समर्पण करते हैं। उन जीवों के उद्धार के लिए स्वाध्याय को तप कहा है। केवल तप ही नहीं, परम तप कहा है।

### कर्ममूलनाशक

तपस्याभ्यन्तरे बाह्ये स्थिते द्वादश तपाः,  
स्वाध्यायेन समं नास्ति न भूतो न भविष्यति ॥  
बह्वीभिर्भवकोटीभिः व्रताद्यत्कर्म नश्यति,  
प्राणिनः तत्क्षणादेव स्वाध्यायात् कथितं बुधैः ॥

‘कर्मक्षय के लिए स्वाध्याय के समान कोई अन्य तप समर्थ नहीं, स्वाध्याय के संयोग मात्र से कर्ममुक्त हो जाता है। कर्मनाश करने के लिए करोड़ों भव तक मनुष्य को व्रत धारण करना पड़ता है, किन्तु स्वाध्याय से वही कर्म तत्काल नष्ट होता है।’ स्वाध्याय परिणाम-विशुद्धि का कारण है। स्वाध्याय से पूर्वबद्ध निन्द्य कर्म नष्ट होते हैं।

जिण-मोहीधण-जलणो तमंधयरदिणपरओ।  
कम्ममलकलुसपुरुषो जिणवयणमियोवहि सुहयो ॥

जिनागम मोहरूपी ईंधन को भस्म करने के लिए अग्नि के समान है, अज्ञानरूपी गाढ़ अन्धकार को नष्ट करनेके लिये सूर्य के समान है, द्रव्यकर्म-भावकर्म का मार्जन करने के लिये समुद्र के समान है।

‘रवि शशिन न हरे सो तम हराय, सो शास्त्र नमो बहुप्रीति लाय।’

### स्वाध्याय का फल

स्वाध्याय के परोक्ष और प्रत्यक्ष के भेद से दो प्रकार के फल होते हैं। उनमें भी प्रत्यक्ष फल साक्षात् और परम्परा के भेद से दो प्रकार का है। अज्ञान का विनाश, ज्ञानरूपी दिवाकर की उत्पत्ति, देव और मनुष्यादि के द्वारा निरन्तर अनेक प्रकार से की जाने वाली अभ्यर्थना और प्रत्येक समय में होनेवाली असंख्यातगुणी रूप से कर्मों की निर्जरा इसे साक्षात् फल कहते हैं।

शिष्य-प्रशिष्यों आदि के द्वारा की जाने वाली निरन्तर अनेक प्रकार की पूजा परम्पराफल है।

परोक्षफल भी दो प्रकार है- प्रथम अभ्युदय और दूसरा निःश्रेयस सुख।

सातावेदनीयादि सुप्रशस्त कर्मों के तीव्र अनुभाग के उदय से प्राप्त हुआ इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र, त्रयस्त्रिंश व सामानिक आदि देवों का सुख तथा राजा, अधिराज, महाराज, मण्डलीक, अर्धमण्डलीक, महामण्डलीक, अर्धचक्री, चक्रवर्ती पद की प्राप्ति अभ्युदय सुख है तथा अर्हन्तपद की प्राप्ति निःश्रेयस सुख है।

अतः अज्ञानरूपी अन्धकार के विनाशक, भव्यजीवों के हृदय को विकसित करनेवाले तथा मोक्षपथ को प्रकाशित करनेवाले सिद्धान्त (आगम) को भजो अर्थात् स्वाध्याय करो। भगवती शारदादेवी का भण्डार और उसकी महिमा निराली एवं वचनातीत है।

‘आचार्य श्री धर्मसागर अभिन्द ग्रन्थ’  
से साभार

### प्रतिष्ठाचार्य जयकुमार ‘निशांत’ को मातृ-शोक

टीकमगढ़। देश के लब्धप्रतिष्ठ प्रतिष्ठाचार्य श्री पं. गुलाबचंद्र जैन ‘पुष्प’ की धर्मपत्नी एवं प्रतिष्ठाचार्य पं. जयकुमार जी निशांत टीकमगढ़ की माँ श्रीमती रामबाई जैन का ३१ मई २००८ को शाम ५ बजे धर्मध्यान-पूर्वक स्वर्गवास हो गया है।

१० मई १९२६ को लार में जन्मी श्रीमती रामबाई सादा जीवन उच्च विचारवाली धर्मपरायण महिला थीं। आपके पाँच पुत्र हैं- शिखरचंद्र जैन, श्री उत्तमचंद्र जैन, श्री राजकुमार जैन, श्री ब्र. जय निशांत जैन, डॉ. प्रदीप जैन।

श्री पं. गुलाबचंद्र ‘पुष्प’ जी के आवास ‘पुष्प भवन’ में ०३ जून को आयोजित शोकसभा में मध्यप्रदेश सरकार की ओर से म.प्र. हस्त-शिल्प निगम के अध्यक्ष श्री कपूरचंद्र घुवारा, विद्वानों की ओर से श्री पं. पवन दीवान मुरैना, श्री पं. राजेन्द्र चंदावली, श्री पं. सुरेन्द्र बड़ागाँव, युवा विद्वानों की ओर से श्री पं. सुनील ‘संचय’ शास्त्री, जैन मिलन की ओर से श्री जिनेन्द्र घुवारा, अखलेश सतभैया, पूर्व विधायक मगनलाल तथा जैन तीर्थक्षेत्र द्रोणगिरि, नैनागिरि, पपौरा, आहार जी, नवागढ़ के पदाधिकारियों ने, व अन्य सैकड़ों गणमान्य लोगों ने शोक श्रद्धांजलि अर्पित की।

सुनील जैन ‘संचय’

# धरणेन्द्र-पद्मावती

पं. मिलापचन्द्र कटारिया

प्रतिष्ठाग्रन्थों में तीर्थकरों के चौबीस यक्ष और चौबीस यक्षियों के नाम आते हैं। ये ही शासन देव-देवियाँ कहलाती हैं। इनमें से श्री पार्श्वनाथ स्वामी के यक्ष का नाम धरण और यक्षिणी का नाम पद्मा या पद्मावती लिखा मिलता है। ये ही वे धरणेन्द्र-पद्मावती माने जाते हैं, जो नाग-नागिन के जीव थे, अग्नि में जलते हुए जिनको भगवान् पार्श्वनाथ ने नमस्कार मन्त्र सुनाया था, जिसके प्रभाव से वे धरणेन्द्र पद्मावती हुए थे। इस प्रकार की आम धारणा जैनसमाज में चली आ रही है। किन्तु इन धरणेन्द्र-पद्मावती को अगर हम पार्श्वनाथ की यक्ष-यक्षी मान लेते हैं, तो नीचे लिखी शंकायें उठती हैं।

धरणेन्द्र के विषय में शंकायें-

1. धरणेन्द्र तो भवनवासी देवनिकाय के अन्तर्गत नागकुमार जाति के देवों का इन्द्र माना गया है। उसे यक्ष कैसे कहा जा सकता है?

2. चौबीस यक्षों में कोई भी यक्ष ऐसा नहीं है, जो किसी जाति के देवनिकाय का इन्द्र हो। तब यह धरण यक्ष ही नागकुमारों का इन्द्र धरणेन्द्र कैसे माना जा सकता है?

3. इन शासन देव-देवियों का कथा-चरित्र किसी भी प्रामाणिक जैन आगम में अभी तक देखने में नहीं आया है कि किस वजह से ये शासन देव-देवियाँ मानी गयी हैं? ऐसी सूरत में धरणेन्द्र और उसकी देवी को पार्श्वनाथ स्वामी के शासन देव-देवी मानकर उनकी यह कथा पार्श्वनाथ-चरित्र में बताना सन्देहजनक है। अर्थात् यह धरणेन्द्र और उसकी देवी पार्श्वनाथ की शासनदेव-देवी नहीं हैं।

4. त्रिलोकप्रज्ञप्ति (प्रथम भाग के पृष्ठ 266) में तो पार्श्वनाथ के यक्ष का नाम ही धरण न लिखकर मातंग लिखा है। इसके अलावा श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र ने भी अपने बनाये अभिधानचिन्तामणि-कोश में पार्श्वनाथ के यक्ष का नाम धरण न लिखकर पार्श्वयक्ष नाम लिखा है। यही नाम पूजासार दिगम्बरग्रन्थ में भी लिखा है। यदि वास्तव में धरणेन्द्र ही पार्श्वनाथ का यक्ष होता, तो ये नाम वेदशात्रों में नहीं पाये जाते। अतः धरण और

धरणेन्द्र दोनों एक व्यक्ति नहीं हैं।

पद्मावती के विषय में विचार

प्राचीन जैनसाहित्य में तो धरणेन्द्र की कोई पद्मावती नाम की देवी हुई है, ऐसा उल्लेख ही नहीं मिलता है। त्रिलोकप्रज्ञप्ति और त्रिलोकसार में धरणेन्द्र की अग्रदेवियों के कोई नाम ही नहीं मिलते हैं। हाँ, असुरकुमारों के इन्द्र चमर और वैरोचन की अग्रदेवियों के पाँच-पाँच नाम जरूर मिलते हैं। उन नामों में 'पद्मा' नाम की अग्रमहिषी वैरोचन के बताई है। धरणेन्द्र (नागकुमारों के इन्द्र) के नहीं बताई है।

हरिवंशपुराण सर्ग 22 श्लोक 54, 55, 102 में धरणेन्द्र की देवियों के नाम दिति अदिति लिखे हैं। पद्मावती नहीं लिखा है।

अकलंकाचार्य कृत राजवार्तिक में धरणेन्द्र की अग्रदेवियों की छह संख्या बताई है, पर उनके नाम नहीं लिखे हैं।

आचार्य गुणभद्र कृत उत्तरपुराण के पर्व 73 श्लोक 141 में लिखा है कि-“नाग, नागिनी मरकर नाग का जीव धरणेन्द्र और नागिनी का जीव उसकी पत्नी हुआ।” इतना ही लिखा है। यहाँ भी पत्नी का नाम नहीं लिखा है। भगवान् पार्श्वनाथ के उपसर्ग निवारण के लिये वे आये थे, उस प्रसंग में भी उत्तरपुराण में पद्मावती नाम का उल्लेख नहीं किया गया है। यह भी नहीं कह सकते हैं कि संक्षिप्त कथन करने की वजह से पद्मावती का नाम नहीं लिखा गया है, क्योंकि इसी पर्व के अन्त में मंगलरूप से अनेक पद्य लिखे गये हैं। उनमें भी उपसर्ग-निवारण का जिक्र करते हुए आचार्य गुणभद्र ने तीन जगह “धरणेन्द्र की देवी” इतना मात्र ही लिखा है, मूलपाठ में कहीं भी पद्मावती नाम नहीं लिखा है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अन्य आचार्यों की तरह गुणभद्र की दृष्टि में भी धरणेन्द्र की देवी पद्मावती नाम की नहीं थी। दूसरा नाम भी उन्होंने नहीं दिया, इससे यही मालूम पड़ता है कि गुणभद्र की परम्परा में धरणेन्द्र की देवियों के नाम विच्छेद हो चुके थे। यही कारण है, जो त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार और राजवार्तिक में धरणेन्द्र की देवियों के नाम लिखे मिलते हैं।

आचार्य समंतभद्रकृत स्वयंभूस्तोत्र में भी पार्श्वनाथ की स्तुति में 'धरण' का तो उल्लेख है, पर पद्मावती का नहीं है।

और तो क्या श्वेतांबराचार्य हेमचन्द्रकृत त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित के पार्श्वनाथचरित्र में भी नाग-नागिनी का मरकर धरणेन्द्र और उसकी देवी होना तो लिखा है, पर देवी का नाम पद्मावती वहाँ भी नहीं लिखा है।

इन सब बातों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जब श्री पार्श्वनाथ स्वामी के धरण नाम के यक्ष को धरणेन्द्र करार दे दिया, तो उन्हीं भगवान् की यक्षिणी पद्मावती को भी धरणेन्द्र की देवी पद्मावती बना दिया है। ऐसा करते हुए यह भी नहीं सोचा कि क्या प्रत्येक तीर्थंकर की यक्ष-यक्षी का आपस में दाम्पत्यसम्बन्ध है? इसलिये न तो धारण यक्ष धरणेन्द्र है और न पद्मावती यक्षिणी ही धरणेन्द्र की देवी पद्मावती है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि धरणेन्द्र पद्मावती की यह कल्पना मूलसंघ से भिन्न द्राविड़दि संघ-वालों ने की है। मल्लिषेण (भैरव-पद्मावती-कल्प के कर्ता), वादिराज (पार्श्वनाथचरित के कर्ता) जो कि द्राविड़संघी थे, उन्होंने ऐसा कथन किया है। सम्भव है उनकी गुरु-

परम्परा से भी ऐसा कथन चला आ रहा हो। इन्हीं का अनुसरण बाद के कुछ ग्रंथकारों ने भी किया है। द्राविड़-संघ के साधुओं की गणना मठपति-साधुओं में की जाती है। ये साधु जागीरें रखते हैं। संघभेद होने से द्राविड़संघ और मूलसंघ की मान्यताओं में भी कहीं-कहीं फर्क रहता है। यही कारण है, जो द्राविड़संघी वादिराजकृत पार्श्वनाथ-चरित्र का कथन मूलसंघी गुणभद्रकृत उत्तरपुराण से कहीं-कहीं मिलता नहीं है। श्री पार्श्वनाथ पर उपसर्ग करनेवाले कमठ के जीव का नाम वादिराज ने भूतानन्द नाम का असुरजाति का देव लिखा है, जब कि उत्तरपुराण में संवर नामक ज्योतिषीदेव लिखा है। भूतानन्द यह नाम भी त्रिलोकसारादि ग्रंथों में असुरों में न लिखकर नागकुमारों में लिखा है।

इस सारे ऊहापोह से यह प्रकट होता है कि श्री पार्श्वनाथ स्वामी के जो यक्ष-यक्षिणी धरण और पद्मावती के नाम से कहे जाते हैं, वे नाग-नागिनी के जीव धरणेन्द्र और उसकी देवी से बिल्कुल भिन्न हैं। यानी यह धरणेन्द्र और उसकी देवी जो कि नाग-नागिनी के जीव थे, पार्श्वनाथ भगवान् की शासनदेव-देवी नहीं हैं। और जहाँ इनको पार्श्वनाथ की शासन देव-देवी लिखा है, वह अजीब मेल किया है, वह कथन मूलसंघ का नहीं है।

'जैन निबन्ध रत्नावली' से साभार

### जैन संगठन की याचिका पर केंद्र को नोटिस

नई दिल्ली। विश्व जैन संगठन द्वारा जैनधर्म को अल्पसंख्यक धर्म घोषित कराने के लिए दायर याचिका पर दिल्ली उच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार, चार केंद्रीय मंत्रालय और राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग को नोटिस जारी किए हैं। संगठन के अध्यक्ष श्री संजय जैन ने कहा कि याचिका में हमने केवल धार्मिक आधार पर अल्पसंख्यक घोषित करने की माँग की है, ताकि हम जैन तीर्थों पर हो रहे अतिक्रमण को रोक सकें, शिक्षण संस्थान के संचालन में स्वायत्तता प्राप्त कर सकें व हजारों वर्षों से प्रचलित जैनधर्म की स्वतंत्र पहचान बनाए रख सकें। उन्होंने केंद्र सरकार पर जैनधर्म का अस्तित्व मिटाने का आरोप लगाते हुए कहा कि जैन धर्म के प्राचीन व स्वतंत्र धर्म होने के अनेक अकादमिक प्रमाण उपलब्ध हैं। इन प्रमाणों को कई राज्य सरकारों और न्यायालयों ने भी स्वीकार किया है।

'नवदुनिया' भोपाल, २४२ ००८ से साभार

### श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल जबलपुर का सर्वश्रेष्ठ परीक्षाफल

म.प्र. बोर्ड परीक्षा मण्डल भोपाल से मान्यता प्राप्त श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय एवं छात्रावास कक्षा १०वीं एवं १२वीं वर्ष २००७-०८ का परीक्षा-परिणाम शतप्रतिशत रहा।

कक्षा १०वीं में छात्र पियूष जैन ने ९० प्रतिशत एवं छात्र रौशन जैन ने ८८ प्रतिशत अंक प्राप्त किये।

इसी तरह कक्षा १२वीं में गणित विषय से छात्र वैभव जैन ने ७९ प्रतिशत अंक एवं प्रदीप जैन व देवेन्द्र जैन ने ७७ प्रतिशत अंक प्राप्त किये। इसी प्रकार कामर्स संकाय से छात्र प्रशांत जैन ने ८१ प्रतिशत व गौरव जैन ने ८० प्रतिशत अंक प्राप्त कर संस्था का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिख दिया।

बा.ब्र. जिनेश भैया जी ने बच्चों की उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ कहा कि हमारा उद्देश्य समाज के पिछड़े हुए एवं आर्थिक स्थिति से कमजोर छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है।

व्यवस्थापक- ब्रजेश चँदेरिया

# दिगम्बर जैन मुनि

श्री सुमेरचन्द्र जैन शास्त्री  
एम. ए. साहित्यरत्न, दिल्ली

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं, भैक्षमक्षय्यमन्नं,  
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं, तल्पमस्वल्पमुर्वी।  
येषां निःसङ्गतांगीकरणपरिणतिः, स्वात्मसंतोषिणस्ते,  
धन्याः सन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति ॥

(भर्तृहरि-वैराग्यशतक)

जिनका हाथ ही पवित्र वर्तन है, भिक्षाशुद्धि से प्राप्त अन्न ही जिनका भोजन है, दशों दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं, सारी पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, एकान्त में निःसंग रहना ही जो पसन्द करते हैं, दीनता को जिन्होंने छोड़ दिया है तथा जो कर्मों को निर्मूल करते हैं और अपने ही में सन्तुष्ट रहते हैं, वे पुरुष धन्य हैं।

महान् अध्यात्मवेत्ता और कुशल तार्किक आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रन्थ में बताया है—  
“जो यतिधर्म को छोड़कर प्रथम गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है वह जिनशासन में निग्रह स्थान के योग्य है।”

किसी भी धर्म का प्रभाव और प्रचार जितना साधुओं द्वारा हुआ है, उतना गृहस्थों द्वारा नहीं। जब हमारा साधु-समाज वक्ता, तपोनिष्ठ, प्रभावशाली और लोक-कल्याण करने में अग्रसर रहा, तभी जिन शासन की विजय पताका गूँजती रही। आचार्य समन्तभद्र, अकलंक-देव, स्याद्वाद-विद्यापति विद्यानंदि, वादीभसिंह जैसे यति-पुंगव रहे, तभी अहिंसा और अनेकान्त की दुन्दुभि बजी। लगभग चालीस वर्ष पूर्व जब आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का दिल्ली में पदार्पण हुआ, तब दिल्ली और नई दिल्ली दोनों स्थानों के प्रमुख बाजारों, सरकारी भवनों, और गलियों में आचार्य महाराज के संघसहित फोटो खींचे गये। किसी ने यह चर्चा की कि आचार्य महाराज को फोटो खिंचवाने का बड़ा शौक है। यह चर्चा आचार्य महाराज के कानों में पड़ी, उन्होंने कहा भाई मेरे कोई घर भी नहीं है। मैं इन फोटुओं को कहाँ लगाऊँगा। मेरा आशय इतना ही है कि साधु समाज पर किसी प्रकार विहार में रुकावट न पड़े। ये चित्र उसके प्रमाण स्वरूप समझे जायँ।

मनोज्ञ साधु, प्रभावशाली वक्ता, मुनि श्री कुन्थुसागर जी महाराज को सुदासना स्टेट के महाराज ने राजभवन में प्रवचन करने के लिये आमंत्रित किया, तो मुनिश्री ने यह कहकर टाल दिया कि हम लोग आम जनता

में प्रवचन करते हैं। यदि स्टेट के महाराज उपदेश सुनने के इच्छुक हों, तो यहीं पधारें। महाराज बुद्धिमान थे, उन्होंने कहा मुनि- श्री! मैं तो उपदेश सुनने के लिये आ सकता हूँ, पर मेरे रनवास में जो रानियाँ हैं, राज्य कर्मचारी हैं, वे सभी नहीं आ सकते। आपके यहाँ पधारने से धर्म की प्रभावना और अहिंसात्मक विचारधारा का प्रचार होगा। आचार्य महाराज विवेकी और दूरदर्शी थे। उन्होंने निःसंकोच राजदरबार में जाना स्वीकार किया। परिणाम यह निकला कि गुजरात की अनेक स्टेटों के राजे, राजकुंवर आदि उनके कट्टर भक्त बन गये और उनके जन्म दिवस पर अहिंसा के नाम से अवकाश करने लगे।

भगवान् महावीर स्वामी के पश्चात् अढ़ाई हजार वर्षों के काल में दि. जैन मुनि समाज का सिंहावलोकन करें, तो विदित होगा कि जब जब हमारा साधु समाज प्रभाव-शाली हुआ तभी जनता की चारित्र-ज्ञान के समुज्ज्वल प्रकाश और रत्नत्रय के प्रति श्रद्धा बढ़ती गई। भगवान् महावीर के पश्चात् ६८३ वर्षों तक अंग पूर्व के ज्ञाता होते रहे। उनके पश्चात् ११० वर्ष तक व्यवधान आ गया। तदनन्तर अर्हंदि जैसे युग प्रवर्तक कुशल यतीश्वर हुये, जिन्होंने मुनिसंघ में साहित्यरचना के सम्बन्ध में ऐसी स्पर्धा जगाई कि जिसके फलस्वरूप एक से बढ़कर महान् महान् आचार्य हुये, जो नैयायिक, वाग्मी, कवि, तपस्वी होते हुये सिद्धान्त-विषयों के पारंगत थे।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की प्रतिभा का क्या कहना! अध्यात्मविषयों पर उन्होंने अपूर्व वाङ्मय की रचना की। दि. जैनधर्म का नये रूप से उत्थान किया। आचार्य उमास्वामी, समन्तभद्र, यतिवृषभ, वीरसेन, जिनसेन, अकलंक, विद्यानंदि, प्रभाचन्द्र जैसे ऋषिपुंगव हुये, जिन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य सरस्वती की सेवा का बनाया।

ऐतिहासिक काल से ही दिगम्बरमुनि-परम्परा लगातार चलती रही। जब भारत में नदों का राज्य था, वे जैनधर्म को धारण करते थे। उन्हीं नदों में शक नन्द राजा दि. जैन मुनि हो गये। मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त, जीवन के अन्तिम समय में अपने गुरु भद्रबाहु की सेवा के लिये दक्षिण चले गये और वहाँ जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण

करके स्वर्ग को प्राप्त हुये। जब सिकन्दर ससैन्य यूनान को वापिस लौटा तो मुनि कल्याणक को भी अपने साथ ले गया। सुंग और आन्ध्र वंशी राजाओं में हाल और पुलुमादि जैसे जैन राजा हुये, जिनके समय ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में एक दिगम्बर जैनाचार्य भृगु कच्छ से यूनान देश को गये। यवन छत्रप विदेशी राजाओं में मनेन्द्र (MENADER) नामक एक प्रसिद्ध राजा हुआ, जिसने निर्ग्रन्थ मुनियों से धर्मतत्त्व सुना और जैनधर्म में दीक्षित हो गया। मथुरा में कंकाली टीले से प्राप्त अनेक दिगम्बरजैन मूर्तियाँ ऐसी मिली हैं, जिनके निर्माणकर्ता विदेशी शक राजा हुये, जिन्होंने जैनधर्म को अंगीकार कर लिया था।

भिक्षुराज खारवेल ने पुष्यमित्र को परास्त करके जब कुमारी पर्वत पर ऋषियों का महासम्मेलन किया, तो उस सम्मेलन में समस्त देश के विभिन्न भागों से हजारों मुनि-राज एकत्रित हुए। उस काल में मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ती, राजगृह, जैनधर्म के केन्द्र थे, जहाँ साधुओं के संघ विद्यमान थे। जब सम्राट् हर्ष भारत में राज्यशासन करते थे, उस समय दिगम्बर मुनियों का सद्भाव था।

राजकवि बाण ने अपने ग्रन्थों में उल्लेख किया है कि राजा जब गहन जंगल में जा पहुँचा, तो वहाँ उसने अनेक तरह के तपस्वी देखे। उनमें नग्न दिगम्बर आर्हत जैन साधु भी थे। हर्ष ने अपने महासम्मेलन में उन्हें शास्त्रार्थ के लिए बुलाया था और वे बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। मध्यकालीन हिन्दूराज्य में दिगम्बर मुनियों का सद्भाव रहा। जैनाचार्य वप्पसूरि ने कन्नौज नरेश द्वारा सम्मान पाया। श्रावस्ती का सुहृद्ध्वज जैन नरेश था, जिसके समय में दिगम्बर मुनियों का लोक कल्याण में निरत रहना स्वाभाविक है। शौरीपुर का राजा जितशत्रु जीवन के अन्तिम समय में मुनिधर्म को अंगीकार करके शान्तिकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। परमारवंशीय राजाओं में मुंज और भोज अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। वे दोनों ही विद्या-रसिक थे। कवि धनपाल और उनके छोटे भाई जैनधर्म में दीक्षित हुये। ख्यातिप्राप्त आचार्य शुभचन्द्र ने भी राज्यपाट त्याग कर जैनश्वरी दीक्षा स्वीकार की। दिगम्बर जैनाचार्य अमितगति भी इसी काल में हुये।

नीतिवाक्यामृत और यशोधरचरित्र जैसे विशिष्ट ग्रन्थों का निर्माण करने वाले उद्भट्ट विद्वान् श्री सोमदेव सूरि इसी काल में हुए। भगवान् ऋषभदेव की भक्ति से ओतप्रोत प्रखर तपस्वी मानतुंग आचार्य इसी काल के ज्योतिर्मय

नक्षत्र थे। मुनि मदनकीर्ति राजा अर्जुनदेव के गुरु थे। कविवर आशाधर जी ने अनेक साधुओं को जैन सिद्धान्त में निपुण बनाया। विशालकीर्ति महाराज के शिष्य मदनकीर्ति मुनि-राज ने शास्त्रार्थ करके महाप्रमाणीक की पदवी पाई। गुजरात के प्रसिद्ध नगर अंकलेश्वर में भूतिबलि और पुष्पदन्ताचार्य ने आगम ग्रन्थों की उस समय रचना की थी। पटना में सोलंकी सिद्धराज की सभा में दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदचन्द्र का देवसूरि श्वेताम्बराचार्य से शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। दिगम्बर जैनाचार्य ज्ञानभूषण जी ने दक्षिण भारत के प्रान्तों में जैनधर्म प्रचारार्थ अनेक उपदेशकों को नियुक्त कराया। इनके शिष्य श्री शुभचन्द्राचार्य हुए जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। वे अद्वितीयवादी और और कुशल तार्किक थे। इनका सम्बन्ध दिल्ली से विशेष रहा। चन्देले राजा मदनवर्मदेव के समय में दिगम्बरमुनि-धर्म उन्नत रूप में था। तेरहवीं शताब्दी में अनन्तवीर्य नाम के आचार्य हुए। इनके उपदेश से पद्मनाभ-धर्मकायस्थ कवि ने यशोधरचरित्र की रचना की!

राजपूताना, मध्यप्रान्त, बंगाल आदि प्रान्तों में दि. मुनि निर्द्वन्द्व विचरण करते थे। अजमेर के चौहान राजाओं में दिगम्बर जैनधर्म का आदर था। मुनि पद्मनंदि और शुभचन्द्र के उपदेश से पृथ्वीराज और महाराजा सोमेश्वर ने बिजो-लिया के पार्श्वनाथ मंदिर के लिये दो गाँव अर्पित किये। दिगम्बर जैनाचार्य श्री धर्मचन्द्र जी का महाराणा हमीर सम्मान किया करते थे। जब आठवीं शताब्दी के उपरान्त दक्षिण भारत में दिगम्बर जैनों के साथ अत्याचार होने लगे, तो उन्होंने अपना केन्द्र उत्तर भारत बनाया। राजर्षि भर्तृहरि के वैराग्यशतक, मुद्राराक्षस नाटक, गोलाध्याय आदि वैदिक ग्रन्थों में दि. धर्म की प्रशंसा और उल्लेख मिलता है।

दक्षिण भारत सदैव दि. जैनधर्म का केन्द्र रहा है। भगवान् बाहुबली की मनोज्ञमूर्ति श्रमणबेलगोला, कारकल, वेणूर इसके उज्ज्वल उदाहरण हैं। दक्षिण मदुरा का मुनिसंघ प्रसिद्ध है, जिसकी उच्चकोटि की आस्था, साहित्य-निर्माण की प्रबल प्रेरणा के कारण तमिलसाहित्य विश्व का देदीप्यमान प्रेरणास्पद साहित्य है। तिरुवल्लूकर, मणिमेखला, तमिलवेद इसके उदाहरण हैं। आचार्य सिहनंदि जैसे प्रतापी मुनिराजों के आशीर्वाद से होय्यसल और गंगवंश की नींव पड़ी। विष्णुवर्धन से पराक्रमी महाराजा, चामुण्डराय जैसे प्रबल सेनापति इसके दीप्तमान् उदाहरण हैं। राजा अमोघवर्ष को जैनशासनमय बनाने का श्रेय वीरसेन

और जिनसेन जैसे दिग्गज महारथियों को है, जिनके उपदेश के कारण महाराजा स्वयं जीवन के अन्तिम समय मुनिदीक्षा अंगीकार करते हैं। रत्न, पन्न, पोल्ल जैसे कर्नाटक साहित्य की विभूति कविरत्नों को जन्म देने का श्रेय इसी मैसूर की स्वर्णमयी भूमि को है जहाँ खानों से सोना और नगरों से अहिंसात्मक रत्नों की निधि प्रकट होती है।

भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण दक्षिण भारत पहुँचा। वहाँ का राजा जीवन्धर जैनधर्म में दीक्षित होकर मुनि हो गया। दक्षिण में मुनियों की अविच्छिन्न परम्परा सदा से चली आई है। यतीन्द्र कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, जैनाचार्य सिंहनंदि, जिन्होंने गंगबाड़ी का राज्य स्थापित किया, श्रीवादीभसिंह, श्रीनेमीचन्द्राचार्य, अकलंकदेव, जिनसेनाचार्य, विद्यानदि, वादिराज, देवकीर्ति, श्रुतकीर्ति, शुभचन्द्र, प्रभाचन्द्र, दामनंदि, जिनचन्द्र, यशः कीर्ति, दिवाकरनन्दी, कल्याणकीर्ति आदि दिग्गज आचार्य हुये, जो अत्यन्त प्रतिभाशाली और दिग्म्बरजैनसंघ के चूड़ामणि थे। तमिलसाहित्य का निर्माण करनेवालों में वज्रनंदि, ऋषभाचार्य आदि प्रसिद्ध हैं।

राज्यवंशों में कदम्ब, वादामी, राष्ट्रकूट, होय्यसल, चालुक्य, गंग आदि जो राजा हुए उनके द्वारा अनेक दिग्म्बर ऋषिपुंगव सदैव सम्मानित होते रहे। जब वर्धा के महाजन बन्धु दक्षिण भारत के पुंडकोत्तम स्टेट के दौरे पर गये, तो उन्होंने पाया कि इस छोटी रियासत में मुनियों के ऐसे केन्द्र थे, जहाँ साधु रहकर आसपास प्रचारार्थ जाते थे।

मुसलमानी काल में साधुओं का सद्भाव जुगनु के प्रकाश की तरह यत्र-तत्र क्वचित् ही रहा। चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शांतिसागरजी महाराज से ४५ वर्ष पूर्व संघभक्त-शिरोमणि सेठ पूनमचन्द्र घासीलाल जी एवं उनके सुपुत्रों ने उत्तर भारत में पदार्पण करने तथा तीर्थराज सम्प्रेदशिखर की यात्रा करने की प्रार्थना की तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार करके एक नये स्वर्णयुग का सूत्रपात किया। कविरत्न पं. भूधरदास जी जैसे मुनिभक्तों ने मुनिराजों के कभी दर्शन नहीं किये थे, तभी तो भक्ति से तन्मय होकर कहते थे—‘ते गुरु मेरे उर वसो, जे भव जलधि जहाज।’

हम लोगों का तीव्र पुण्योदय है कि हमने आचार्य महाराज और उनकी तेजस्वी शिष्य परम्परा के साक्षात् दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल किया है। वर्तमानकालीन मुनिराजों में मोरेना में मुनि अनंतकीर्ति महाराज, आरा में शुभचन्द्र और शिवभूति जी, अग्नि की तीव्र ज्वाला से संतप्त होने पर भी समभाव से कष्ट सह घोरपसर्ग-

विजयी हुए। हैदराबाद आदि मुसलिम रियासतों में मुनियों के बिहार पर प्रतिबन्ध लगा दिया। समाज के नेताओं ने मुनिधर्म का सही स्वरूप समझाकर उन अधिकारियों को उनका भक्त बना दिया। प्रतिभाशाली साधु कुन्धुसागर जी महाराज ने सुदासना, अलुआ, मणिकपुरा, सिरोही आदि रियासतों में भ्रमण करके अहिंसात्मक भावनाओं को जागृत करने में अत्यन्त गौरवशाली कार्य किया। आचार्य सुधर्मसागर जी ने सभी मुनिराजों को शिक्षण देकर सुयोग्य ज्ञानी बनाया। आचार्य महावीरसागरजी नेमिसागरजी, नमिसागर जी, आचार्य महावीर कीर्ति जी, आचार्य शिवसागरजी एवं वर्तमान साधु आ. धर्मसागरजी, आचार्यकल्प श्रुतसागर जी, आचार्य देशभूषण जी, आचार्य विमलसागर जी, परम प्रभावक मुनि विद्यानन्द जी आधुनिक मुनिमण्डल के ऐसे प्रतिनिधि हैं जिन पर सारे देश को गर्व है। ये सभी अपने प्रभाव से जनसाधारण में वीरशासन को लोकप्रिय बनाने में अग्रसर हैं। अनेक आर्यिकायें, क्षुल्लिकायें, एलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आज देश के विभिन्न भागों में विहार कर रहे हैं। इन सबके द्वारा ज्ञान और चारित्र की अपूर्व उन्नति हो रही है।

आचार्य देशभूषण जी महाराज भगवान् महावीर स्वामी की २५०० वीं निर्वाण महोत्सव राष्ट्रीय कमेटी की प्रथम बैठक में पार्लियामेन्ट भवन में पधारे। उनके वक्तव्य का अच्छा प्रभाव पड़ा। अब देश के किसी भी भाग में मुनिविहार पर पाबन्दी नहीं लग सकती। आज दिग्म्बर जैन साधुओं की संख्या डेढ़ सौ के लगभग होगी। कुछ लोग उनकी आलोचना करते हैं। सुधार की भावना से आलोचना करना बुरा नहीं है, परन्तु छिद्रान्वेषण करना बुरा है। हमारे साधुसमाज में कमी हो सकती है। गृहस्थ और साधु दोनों मिकर उसका निराकरण कर सकते हैं। आवश्यकता है साधु समाज में धार्मिक शिक्षण की। न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त और अध्यात्म विषयों की उन्हें पूरी जानकारी हो। ज्ञानाराधन में उनकी रुचि जगाना हमारा प्रथम कर्तव्य है। इसके बिना साधु समाज में जीवन शक्ति जागृत नहीं हो सकती।

संघ छोटे-छोटे हों, क्योंकि बड़े संघ सभी स्थानों पर रहने में कठिनाई का कारण बन जाते हैं। छोटे संघों द्वारा विभिन्न स्थानों को अधिक लाभ हो सकता है। संघ में एक कुशल व्युत्पन्न विद्वान् अवश्य हो। नगरों की अपेक्षा देहातों में प्रचारकर्ता विशेष हो। अब सभी धर्मों के अनुयायी अध्यात्म और शान्तिवर्धक तत्त्वों के

अभिलाषी हैं। आवश्यकता है किसी की आलोचना न करके अपने अहिंसात्मक सिद्धान्तों का सरल रूप में वर्णन किया जाय। जनता पर साधुसमाज का प्रभाव पड़ता है। साधु मंगलस्वरूप हैं। आवश्यकता है वर्तमान मुनि-समाज अपने सम्मुख समन्तभद्र, अकलंक और विद्यानंदि जैसे मुनिपुंगवों का आर्दश रक्खें। ऐसे मुनिराज जहाँ पहुँचते हैं, वहीं सुभिक्ष रहता है। मुनियों का यह माहात्म्य है—  
पद्मिनी राजहंसाश्च, निर्गन्थाश्च तपोधनाः।  
यं देशमुपसर्पन्ति, दुर्भिक्षं तत्र नो भवेत्॥

आचार्य सोमदेव सूरि ने कहा है—

काले कलौ चले चित्ते, देहे चात्रादिकीटके।  
एतच्चित्रं यदद्यापि, जिनरूपधरा नराः॥

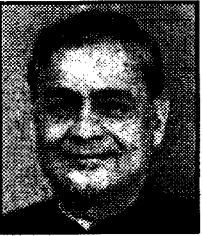
इस समय कलिकाल है। सभी के चित्त चलायमान रहते हैं। शरीर अन्न का कीड़ा बन गया है। ऐसे विकट समय में नग्न दिगम्बर जिन-रूप को धारण करनेवाले पुरुष हैं, यही आश्चर्य है।

अतः जैसे बने मुनि धर्म की रक्षा करनी चाहिये।  
'णमो लोए सव्व साहूण'

'आचार्य महावीरकीर्ति स्मृतिग्रन्थ' से साभार

### पाटनी जी राष्ट्रीय सुरक्षा अवार्ड से पुरस्कृत

न्यूज सर्विस मदनगंज-किशनगढ़ 6 मई। राष्ट्रपति



श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने मंगलवार को नई दिल्ली के विज्ञान भवन में आयोजित एक विशेष भव्य समारोह में आर.के. मार्बल ग्रुप के चेयरमैन अशोक पाटनी को 'नेशनल सैफ्टी अवार्ड माइन्स-06' के लब्धप्रतिष्ठ सम्मान से पुरस्कृत किया है। श्री पाटनी को आर.के. मार्बल प्रा. लि. की मोरबड़ मार्बल माइन्स में खनन-सुरक्षा के मापदण्डों की दृष्टि से किए जानेवाले सुरक्षा इन्तजामात एवं न्यूनतम दुर्घटना दर हेतु सर्वोपरि व उत्कृष्ट कार्य परिणाम दिए जाने पर उक्त राष्ट्रीय स्तर के सम्मान से नबाजा गया है। भारत सरकार के श्रम एवं रोजगार मंत्रालय से सम्बद्ध खान सुरक्षा महानिदेशालय, दिल्ली की उच्च स्तरीय चयन समिति ने देश के विभिन्न भागों का दौरा करके मार्बल प्रसंस्करण व खनन को लेकर कार्य कर रहे व्यापारिक प्रतिष्ठानों के कार्य स्थल का भौतिक सर्वे व मुआयना कर वर्ष 2006 के लिए 'राष्ट्रीय सुरक्षा अवार्ड' (माइन्स) के लिए आर. के. मार्बल का चयन किया था।

चयन समिति ने इसके साथ पूर्व में वर्ष 2004 के लिए भी इसी कम्पनी को सर्वोपरि करार दिया है। दोनों ही चयनित वर्षों 2004 व 2006 के तहत आर. के. मार्बल के चेयरमैन अशोक पाटनी को राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल द्वारा राष्ट्रीय स्तर के अवार्ड से पुरस्कृत व सम्मानित किए जाने पर समूचे मार्बल उद्योग व विशेषकर किशनगढ़ मार्बल सिटी में हर्ष की लहर व्याप्त है।

'दैनिक नवज्योति' अजमेर,  
७ मई २००८ से साभार

### आरोन (गुना, म.प्र.) में सम्यग्ज्ञान विद्या प्रशिक्षण शिविर का आयोजन

परम पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के प्रभावक शिष्य मुनि श्री अजितसागर जी महाराज एवं ऐलक श्री विवेकानन्द सागर जी महाराज का ग्रीष्मकालीन पावन प्रवास हम आरोन नगरवासियों को मिला इस वर्ष के ग्रीष्म काल में मुनिश्री के सान्निध्य में एवं निर्देशन में दस दिवसीय सम्यग्ज्ञान विद्या प्रशिक्षण शिविर का आयोजन १५ मई से २५ मई २००८ तक किया गया इसमें जैनसिद्धान्त प्रवेशिका के भाग १, २, ३ एवं द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र, पूर्वार्द्ध का अध्ययन कराया गया जिसमें ३०० शिविरार्थियों ने भाग लिया इस ग्रीष्मकाल के दौरान ७ मई को अक्षयतृतीया का कार्यक्रम एवं ११ मई २००८ को मुनिश्री जी का १०वाँ मुनिदीक्षा दिवस का भव्य आयोजन हुआ २ जून को शान्तिनाथ भगवान् का निर्वाण-महोत्सव भी मनाया गया इसी तारतम्य में ३ जून को आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज का ३७वाँ समाधि दिवस मनाया था। ८ जून को श्रुतपंचमी के दिन षटखण्डागम ग्रंथराज की भव्य पूजन एवं प्रवचन के साथ मनाया गया। १५ जून रविवार के दिन जैन समाज के प्रतीभाशाली छात्र / छात्राओं का प्रतिभा सम्मान समारोह का आयोजन किया मुनिसंघ के द्वारा ग्रीष्मकाल में प्रातः में प्रश्नोत्तर रत्नमालिका एवं छहढाला का दोपहर में स्वाध्याय कराया गया। शाम को बालसंस्कार शिक्षण का कार्यक्रम मुनिसंघ के द्वारा किया, आरोन नगर में मुनिसंघ के आने से अच्छी धर्मप्रभावना हुई।

डॉ. दीपक जैन 'ब्रदर'  
आरोन जिला गुना (म.प्र.)



# जैनदर्शन में संसार का स्वरूप

ब्र. प्यारेलाल जी बड़जात्या, अजमेर

भारतीय दर्शनों में सबसे अधिक प्राचीन अथ च अनादिनिधन जैनदर्शन है और उसके अपने मौलिक सिद्धान्त भी हैं, जो अन्य दर्शनों की अपेक्षा अनेक विशेषताओं को, लिये हुए हैं। सभी भारतीय दर्शनों के चिन्तन का आधार केन्द्र आत्मा रहा है। सभी दर्शनों ने अपने-अपने ढंग से आत्मा के अस्तित्व और स्वरूप का चिन्तन किया है। जैन दर्शन की चिन्तनपद्धति ही अपने आपमें विलक्षण है। आत्मसुख की चर्चा करते हुए जैनदर्शन ने एक ही बात कही है कि आत्मा अनादि-काल से संसारपरिभ्रमण करते हुए विभिन्न प्रकार के मानसिक, कायिक और आकस्मिक आदि अनेक दुःखों की अबाध चक्की में पिसता रहा है और अब वह दुःखों की शृंखला का नाशकर सुखी होना चाहता है, तो सर्वप्रथम उसे इस बात की गवेषणा करनी होगी कि मेरा संसारपरिभ्रमण किन कारणों से हो रहा है और उसका अन्त किस प्रकार हो सकता है। अनादिकालीन संसारपरिभ्रमण का कारण जैनाचार्यों ने मिथ्यात्व को बताया है और मिथ्यात्व का विरोधी सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व जीव की चिन्तनधारा को समीचीनता प्रदान करता है। मिथ्यात्व के कारण जिस संसारपरिभ्रमण का कभी अन्त नहीं होता, ऐसे अनन्तसंसार का स्वरूप एवं सम्यक्त्व के कारणभूत जीवादि तत्त्वों का चिन्तन ही प्रस्तुत लेख का विषय है।

“संसरणं संसारः परिवर्तनमित्यर्थः।” “कर्मविपाकवशादात्मनः भवान्तरावाप्तिः संसारः” अर्थात् संसरण करने को संसार कहते हैं, जिसका अर्थ परिवर्तन है। कर्म के विपाक वश से आत्मा को भवान्तर की प्राप्ति होना संसार है। अथवा जीव एक शरीर को छोड़ता है और दूसरे नये शरीर को ग्रहण करता है, पश्चात् उसे भी छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करता है। इस प्रकार अनेक बार शरीर को धारण करता है और अनेक बार उसे छोड़ता है। मिथ्यात्व-कषाय आदि से युक्त जीवका इस प्रकार अनेक शरीरों में जो संसरण (परिभ्रमण) होता है उसे संसार कहते हैं।

आत्मा की चार अवस्थाओं का वर्णन भी जैनागम

में मिलता है। संसार, असंसार, नोसंसार और इन तीनों से विलक्षण इस प्रकार चार अवस्थाएँ हैं। अनेक योनियों से युक्त चारों गतियों में परिभ्रमण करना संसार है। पुनः पुनः जन्म नहीं लेना अथवा शिवपद की प्राप्ति या परमसुख की प्रतिष्ठा असंसार है। चतुर्गतिरूप संसारपरिभ्रमण का तो निरोध हो जाता, किन्तु अभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई है, ऐसी जीवनमुक्त सयोगकेवली की अवस्था ईषत्संसार या नोसंसार है। अयोगकेवली इन तीनों से विलक्षण हैं अर्थात् इनके चतुर्गतिरूप संसारपरिभ्रमण का तथा मुक्तावस्थारूप असंसार का तो अभाव है, किन्तु प्रदेश परिस्पन्द का भी अभाव है, जो सयोग केवली में नहीं होता, ऐसी चौथे ही प्रकार की अवस्था अयोग केवली के पाई जाती है।

## पंचपरावर्तनरूप संसार

जिस संसरणरूप संसार की चर्चा ऊपर की गई है वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावपरिवर्तन के भेद से पाँच प्रकार का है।

द्रव्य परिवर्तन- नोकर्म द्रव्यपरिवर्तन और कर्मद्रव्य-परिवर्तन के भेद से द्रव्यपरिवर्तन दो प्रकार है-

किसी एक जीव ने तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों को एक समय में ग्रहण किया। अनन्तर वे पुद्गल स्निग्ध या रूक्ष स्पर्श तथा वर्ण व गन्ध आदि के द्वारा जिस तीव्र, मन्द और मध्यमभाव से ग्रहण किये थे, उस रूप से अवस्थित रहकर द्वितीयादि समयों में निर्जीर्ण हो गये। तत्पश्चात् अगृहीत परमाणुओं को अनन्तबार ग्रहण करके छोड़ा, गृहीतागृहीतरूप मिश्र परमाणुओं को अनन्तबार ग्रहण करके छोड़ा और बीच में गृहीतपरमाणुओं को अनन्तबार ग्रहण करके छोड़ा। तत्पश्चात् जब उसी जीव के सर्वप्रथम ग्रहण किये गये वे ही परमाणु उसी प्रकार से नोकर्मभाव को प्राप्त होते हैं, तब यह सब मिलकर एक नोकर्म-द्रव्यपरिवर्तन है।

एक जीव ने आठ प्रकार के कर्मरूप से जिन पुद्गलों को ग्रहण किया वे समयाधिक एक आवलीकाल के बाद द्वितीयादि समयों में निर्जीर्ण हो गये। पश्चात् जो क्रम नोकर्म द्रव्यपरिवर्तन में बतलाया है उसी क्रम

से वे ही पुद्गल उसी प्रकार से उस जीव के, जब कर्मभाव को प्राप्त होते हैं, तब यह सब मिलकर एक कर्मद्रव्य-परिवर्तन होता है। इस प्रकार यह जीव अनन्तबार पुद्गलपरिवर्तनरूप संसार में घूमता रहता है। द्रव्यपरिवर्तन में नोकर्म परिवर्तनकाल तीनप्रकार का होता है- अगृहीत ग्रहणकाल, गृहीतग्रहणकाल और मिश्रकाल।

**क्षेत्रपरिवर्तन-** क्षेत्रपरिवर्तन के स्वक्षेत्र और परक्षेत्र परिवर्तन के भेद से दो भेद हैं-

कोई जीव सूक्ष्मनिगोदिया की जघन्य अवगाहना से उत्पन्न हुआ और अपनी आयुप्रमाण जीवित रहकर मर गया, फिर वही जीव प्रदेश-अधिक अवगाहना लेकर उत्पन्न हुआ। एक-एक प्रदेश अधिक की अवगाहनाओं को क्रम से धारण करते करते महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त संख्यातघनांगुल प्रमाण अवगाहना के विकल्पों को वही जीव जितने समय में धारण करता है, उतने काल के समुदाय को स्वक्षेत्रपरिवर्तन कहते हैं।

जिसका शरीर आकाश के सबसे कम प्रदेशों पर स्थित है, ऐसा एक सूक्ष्म निगोदलबध्यपर्याप्तकजीव लोक के आठ मध्य प्रदेशों को अपने शरीर के मध्य में करके उत्पन्न हुआ और क्षुद्रभव ग्रहणकाल तक जीवित रहकर मर गया। पश्चात् वही जीव पुनः उसी अवगाहना से वहाँ दूसरी बार उत्पन्न हुआ। इस प्रकार अंगुल के असंख्यातवें भाग में आकाश के जितने प्रदेश प्राप्त हों उतनी बार वहीं उत्पन्न हुआ। पुनः उसने आकाश का एक-एक प्रदेश बढ़ाकर सब लोक को अपना जन्मक्षेत्र बनाया। इस प्रकार वह सब मिलकर एक क्षेत्रपरिवर्तन होता है।

**कालपरिवर्तन-** कालपरिवर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकाल के सम्पूर्ण समयों और आवलियों में अनेकबार जन्म-मरण धारण करता है और मरता है। तद्यथा- कोई जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में उत्पन्न हुआ और आयु के समाप्त हो जाने पर मर गया। पुनः वही जीव दूसरी उत्सर्पिणी के दूसरे समय में उत्पन्न हुआ और अपनी आयु के समाप्त होने पर मर गया। पुनः वही जीव तीसरी उत्सर्पिणी के तीसरे समय में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार क्रम से इसने उत्सर्पिणीकाल के जितने समय हैं, उतनी बार

उत्सर्पिणीकाल में जन्म लिया और मरण किया तथा उसी प्रकार अवसर्पिणीकाल को भी जन्म-मरण करके पूरा करता है। यह जन्म-मरण का क्रम निरन्तरता की अपेक्षा कहा गया है। यह सब मिलकर एक कालपरिवर्तन है।

**भवपरिवर्तन-** मिथ्यात्वसंयुक्त जीव ने नरक की सबसे जघन्य आयु से लेकर उपरिम ग्रैवेयक विमान तक की आयु क्रम से अनेक बार पाकर भ्रमण किया सो भवपरिवर्तन है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि नरकगति में सबसे जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है। एक जीव उस आयु से वहाँ उत्पन्न हुआ पुनः घूम फिरकर उसी जघन्य आयु से वहाँ उत्पन्न हुआ। ऐसे १० हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार वहीं उत्पन्न हुआ और मर गया। इस प्रकार आयु में एक-एक समय बढ़ाकर नरक की ३३ सागर की आयु पूर्ण की। तदनन्तर नरक से निकलकर अन्तर्मुहूर्त की जघन्य आयु के साथ तिर्यञ्चगति में उत्पन्न हुआ और एक-एक समय बढ़ाते हुए इसने तिर्यञ्चगति की तीनपल्य की आयु समाप्त की। इसी प्रकार मनुष्यगति सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य आयु से लेकर तीन पल्य प्रमाण उत्कृष्ट आयु को पूर्ण किया। देवगति में नरकगति के समान ही १० हजार वर्ष की जघन्य आयु से ३१ सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु पूर्ण करता है। यहाँ ३१ सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु पर्यन्त कहने का यही तात्पर्य है कि यह उत्कृष्ट आयु उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त है और पंचपरावर्तनरूप संसार में भ्रमण करनेवाला जीव इससे ऊपर नवानुदिश और पंचानुत्तर विमानों में उत्पन्न होता नहीं, क्योंकि वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं। पंचपरावर्तनरूप संसार परिभ्रमण करते हुए उपरिम ग्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टिजीव उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह भवपरिवर्तन का लक्षण कहा है।

**भावपरिवर्तन-** इस जीव ने मिथ्यात्व के वशीभूत होकर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशबन्ध के कारणभूत जितने प्रकार के परिणाम या भाव हैं उन सबका अनुभव करते हुए भावपरिवर्तनरूप संसार में अनेक बार भ्रमण किया है।

पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि कोई एक जीव ज्ञानावरणप्रकृति की सबसे जघन्य अपने योग्य अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति को प्राप्त होता है, उसके उस

स्थिति के योग्य षट्स्थानपतित असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान होते हैं और सबसे जघन्य इन कषायाध्यवसाय स्थानों के निमित्त से असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान होते हैं। इस प्रकार सबसे जघन्यस्थिति, सबसे जघन्यकषायाध्यवसायस्थान और सबसे जघन्य अभुभागाध्यवसायस्थान को धारण करनेवाले इस जीव के तद्योग्य सबसे जघन्ययोगस्थान होता है। तत्पश्चात् स्थितिकषायाध्यवसायस्थान और अनुभागाध्यवसायस्थान वही रहते हैं, किन्तु योगस्थान दूसरा हो जाता है, जो असंख्यातभागवृद्धि संयुक्त होता है। इसप्रकार तीसरे, चौथे आदि योगस्थानों में समझना चाहिए। ये सब योगस्थान चारस्थानपतित होते हैं और इनका प्रमाण श्रेणी के असंख्यातवें भाग है। तदनन्तर उसी स्थिति और उसी कषाय-अध्यवसायस्थान को धारण करनेवाले जीव के दूसरा अनुभाग-अध्यवसायस्थान होता है, इसके योगस्थान पहले के समान जानना चाहिए। तात्पर्य यह कि यहाँ भी पूर्वोक्त तीनों बातें ध्रुव रहती हैं, किन्तु योगस्थान श्रेणि के असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। इसप्रकार असंख्यातलोकप्रमाण अनुभाग-अध्यवसायस्थानों के होने तक तृतीयादि अनुभाग अध्यवसायस्थानों में जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यहाँ स्थिति और कषाय-अध्यवसाय तो जघन्य ही रहते हैं, किन्तु अनुभाग-अध्यवसायस्थान क्रम से असंख्यातलोकप्रमाण हो जाते हैं और एक-एक अनुभाग-अध्यवसायस्थान के प्रति जगच्छ्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान होते हैं। तत्पश्चात् उसी स्थिति को प्राप्त होनेवाले जीव के दूसरा कषाय-अध्यवसायस्थान होता है, इसके अनुभाग-अध्यवसायस्थान और योगस्थान पहले के समान जानना चाहिए। इसप्रकार असंख्यात-लोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थानों के होने तक तृतीय कषाय-अध्यवसायस्थानों में वृद्धि का क्रम जानना चाहिए। जिस प्रकार सबसे जघन्यस्थिति के कषायादि स्थान कहे हैं उसी प्रकार एक समय अधिक जघन्यस्थिति के भी कषायादिस्थान जानना चाहिए। इसप्रकार एक-एक समय अधिक क्रम से तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्टस्थिति तक प्रत्येक स्थिति के विकल्प के भी कषायादि स्थान जानने चाहिए। अनन्तभागवृद्धि आदि वृद्धि के छहस्थान, तथा इसीप्रकार हानि भी छह प्रकार की है। इनमें से

अनन्तभागवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि इन दो स्थानों के कम कर देने पर चारस्थान होते हैं। इसप्रकार सर्व मूल व उत्तर प्रकृतियों के परिवर्तन का क्रम जानना चाहिए। यह सर्व मिलकर एक भावपरिवर्तन होता है।

### पंचपरावर्तन का अल्पबहुत्व

अतीतकाल में एक जीव के सबसे कम भावपरिवर्तन के बार होते हैं, अर्थात् सबसे कम बार भावपरिवर्तन होता है। भवपरिवर्तन के बार भावपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं। कालपरिवर्तन के बार भवपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं। क्षेत्रपरिवर्तन के बार कालपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं और पुद्गलपरिवर्तन के बार क्षेत्रपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं। पुद्गलपरिवर्तन का काल सबसे कम है, क्षेत्रपरिवर्तन का काल पुद्गलपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है। कालपरिवर्तन का काल क्षेत्रपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है। भवपरिवर्तन का काल, कालपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है। भावपरिवर्तन का काल भवपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है।

इसप्रकार पाँच प्रकार के संसारपरावर्तन का स्वरूप जानकर उसके निमित्तरूप मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना चाहिए। सम्यग्दर्शन की महिमा यही है कि इस पंचपरावर्तनरूप अनन्तसंसार का उच्छेद हो जाता है और उसकी प्राप्ति होने के पश्चात् जीव का संसारपरिभ्रमण काल अधिक से अधिक अर्द्धपुद्गल-परावर्तन-प्रमाण शेष रह जाता है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति चारों गति का भव्य, संज्ञी, पर्याप्तक, जागृत, साकारोपयोगी जीव ही क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करणलब्धि में उत्तरोत्तर परिणामविशुद्धि के द्वारा मिथ्यात्वादि सप्तप्रकृतियों (मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया व लोभ) का उपशम करके उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। उपर्युक्त पांच लब्धियों में से करणलब्धि बिना शेष चार लब्धियाँ तो अभव्यजीव के भी हो जाती हैं, किन्तु करणलब्धि के बिना सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इन पांचों लब्धियों में करणलब्धि तो अन्तरंग कारण है और शेष लब्धियाँ बहिरंग कारण हैं, ऐसा जिनसेनाचार्य ने महापुराण में कहा है। अस्तु!

‘आचार्य श्री धर्मसागर अभिनन्दनग्रन्थ’

से साभार

जून-जुलाई 2008 जिनभाषित 25

# कुन्दकुन्द की दृष्टि में असद्भूत-व्यवहारनय

प्रो० रतनचन्द्र जैन

अज्ञानियों में अनादिकाल से परद्रव्यों का कर्ता-हर्ता आदि होने का जो अध्यवसान (मिथ्या अभिप्राय) है उसे आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार की

एवं व्यवहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण।  
णिच्छयणयासिद्धा पुण मुणिणो पावन्ति णिव्वाणं॥  
इस २७२वीं गाथा में व्यवहारनय संज्ञा दी है और निश्चय-नय के उपदेश द्वारा उसका प्रतिषेध किया है। इसलिए कुछ आधुनिक विद्वानों ने असद्भूत व्यवहारनय को अज्ञानियों का अनादिरूढ़ व्यवहार मान लिया है और उसे प्रमाण का अवयव मानने से इनकार कर दिया है। वे प्रतिपादित करते हैं कि असद्भूत-व्यवहारनय वस्तुधर्म का निरूपण नहीं करता, मात्र एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के धर्म का आरोप करता है। उनकी यह मान्यता 'जयपुरतत्त्वचर्चा' (भाग २/पृ.४३६) में निम्नलिखित वक्तव्य से स्पष्ट होती है।

“अब रहा असद्भूत व्यवहारनय, सो उसका विषय मात्र उपचार है। समयसार गाथा ८४ में पहले आत्मा को व्यवहारनय से पुद्गल कर्मों का कर्ता और भोक्ता बतलाया गया है, किन्तु यह व्यवहार असद्भूत है, क्योंकि अज्ञानियों का अनादि संसार से ऐसा प्रसिद्ध व्यवहार है, इसलिए गाथा ८५ में दूषण देते हुए निश्चयनय का अवलम्बन लेकर उसका निषेध किया गया है।”

किन्तु यह मान्यता समीचीन नहीं है। सत्य यह है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने व्यवहारनय संज्ञा देकर परद्रव्यों के कर्तृत्वहर्तृत्वादि अभिप्राय को कथंचित् सत्य सिद्ध किया है, क्योंकि 'नय' शब्द कथंचित्त्व का द्योतक है। उक्त अभिप्राय में कथंचित् अर्थात् निमित्तनैमित्तिक भाव की अपेक्षा सत्यता है, किन्तु अज्ञानी उसे सर्वथा सत्य मानते हैं, इसलिए उनके सन्दर्भ में वह मिथ्या अभिप्राय है, किन्तु ज्ञानी उसे सर्वथा सत्य न मानकर कथंचित् सत्य मानते हैं, इसलिए उनके सन्दर्भ में वह व्यवहारनय है।

'नय' शब्द मिथ्या अभिप्राय या मिथ्या कथन का वाचक नहीं है, अपितु सापेक्ष कथन का वाचक है। शशशृंग के समान सर्वथा असत् वस्तु नय का विषय नहीं बन सकती। नय तो प्रमाण का अंश है, अप्रमाण का नहीं। व्यवहारनय भी अज्ञान का अंश नहीं है, अपितु श्रुतज्ञान

का अवयव है। आचार्य अमृतचन्द्र ने स्पष्ट शब्दों में 'जीव कर्मों से बद्ध है' ऐसा कथन करनेवाले असद्भूत व्यवहारनय को 'श्रुतज्ञानावयवभूतयोर्व्यवहारनिश्चयनय-पक्षयोः' इन शब्दों में श्रुतज्ञान का अवयव बतलाया है। कारण यह है कि असद्भूत-व्यवहारनय निमित्त नैमित्तिकादि यथार्थ सम्बन्धों पर आश्रित होता है। इन सम्बन्धों के आधार पर ही उसमें एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के धर्म का प्रयोजनवश आरोप किया जाता है। इसलिए उसकी भाषा कैसी भी हो, जिस धर्म की अपेक्षा उसका कथन होता है, उस धर्म का ही प्रतिपादन उसका प्रयोजन होता है और उसी धर्म की अपेक्षा से वह सत्य होता है। जैसे कोई ज्ञानी पुरुष जीव को पुद्गल कर्मों का कर्ता कहता है, तो निमित्तभाव की दृष्टि से कहता है, उपादानभाव की दृष्टि से नहीं। अतः निमित्तभाव की दृष्टि से यह कथन सत्य है। नय में प्रयुक्तभाषा का आशय तद्गत अपेक्षा पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है।

दूसरी बात यह है कि ज्ञानियों का अभिप्राय ही नय कहलाता है, अज्ञानियों का नहीं, क्योंकि ज्ञानियों के ही अभिप्राय में कथंचित्त्व रहता है, अज्ञानियों के अभिप्राय में नहीं। इसलिए अज्ञानियों के अभिप्राय को असद्भूत व्यवहारनय नहीं कह सकते। अज्ञानियों का परद्रव्यों के कर्ता-हर्ता होने का अभिप्राय निश्चय-निरपेक्ष होता है, इसलिए उनका यह अभिप्राय असद्भूत-व्यवहारनय नहीं कहला सकता, ज्ञानियों का निश्चय-सापेक्ष होता है, इसलिए असद्भूत-व्यवहारनय संज्ञा पाता है।

असद्भूत-व्यवहारनय की परिभाषा ही विवेकगर्भित है। परिभाषा के अनुसार निमित्त और प्रयोजन होने पर अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप असद्भूत-व्यवहारनय कहलाता है—“अन्यत्र प्रसिद्धस्य धर्मस्यान्यत्र समारोपणमसद्भूतव्यवहारः। असद्भूतव्यवहार एव उपचारः।” (आलापपद्धति/सूत्र २०७-२०८)। “मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते।” (वही/सूत्र २१२)। अतः निमित्त और प्रयोजन दृष्टि में रखकर ही अन्यत्र प्रसिद्ध धर्म का अन्यत्र समारोप करना असद्भूत व्यवहारनय है। विमूढ़तापूर्वक ऐसा करना असद्भूत व्यवहारनय नहीं है। वह अज्ञानियों का ही अनादिरूढ़

व्यवहार है।

निमित्त और प्रयोजन दृष्टि में रहने पर यह विवेक बना रहता है कि वस्तु का जिस रूप में कथन किया जा रहा है वह उसका यथार्थ रूप नहीं है, अपितु उसके निमित्तत्वादि धर्म की अपेक्षा उसे इस रूप में कहा जा रहा है। यह विवेक होने पर ही विवक्षित कथन असद्भूत-व्यवहारनय कहलाता है। किन्तु, जब ऐसा विवेक नहीं होता, अपितु वस्तु को वास्तव में वैसा ही समझा जाता है, जिस रूप में उसका कथन किया जाता है, तब वह अज्ञानमय व्यवहार होता है।

इस प्रकार असद्भूत-व्यवहारनय में व्यवहार को ही परमार्थ समझने की भूल नहीं की जाती, अपितु परमार्थ को परमार्थ और व्यवहार को व्यवहार ही समझा जाता है। आचार्य अमृतचन्द्र ने व्यवहार को ही परमार्थ समझ लेने वालों को व्यवहारविमूढदृष्टि कहा है और उन्हें ही शुद्धात्मस्वरूप के बोध में असमर्थ बतलाया है। अतः व्यवहार को ही परमार्थ मान लेना अज्ञानियों का अनादिरूढ़ व्यवहार है, असद्भूत-व्यवहारनय उससे सर्वथा विपरीत है। तात्पर्य यह कि निश्चयनिरपेक्ष उपचार अज्ञानियों का व्यवहार है और निश्चयसापेक्ष उपचार असद्भूत-व्यवहार-नय है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने भी असद्भूत व्यवहारनय का यही स्वरूप माना है। यह इस बात से सिद्ध है कि उन्होंने स्वयं असद्भूत-व्यवहारनय से वस्तु का निरूपण किया है और उसे सर्वज्ञ का उपदेश बतलाया है। यदि वे असद्भूत-व्यवहारनय को अज्ञानियों का अनादिरूढ़ व्यवहार मानते, तो उसके द्वारा वस्तु का निरूपण न करते, क्योंकि अज्ञानपूर्ण मान्यताओं के उपदेश से शिष्य का अज्ञान पुष्ट ही हो सकता है, क्षीण नहीं। आचार्य कुन्दकुन्द ने असद्भूत व्यवहारनय से वस्तुस्वरूप के जो निरूपण किये हैं उसके उदाहरण इस प्रकार हैं-

जीवो न करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।

जोगुवओगा उप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता॥

समयसार/ गा.१००।

अर्थात् जीव न घट का कर्ता है, न पट का, न अन्य द्रव्यों का। उसके योग और उपयोग ही उनके उत्पादक हैं और वह योगोपयोग का कर्ता है।

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द ने जीव के योगोपयोग को घटपटादि परद्रव्यों का निमित्तरूप से कर्ता कहा है, जिसे आचार्य अमृतचन्द्र ने "अनित्यौ योगोपयोगावेव तत्र निमित्तत्वेन कर्तारौ" तथा जयसेनाचार्य ने "इति परम्परया निमित्तरूपेण घटादिविषये जीवस्य कर्तृत्वं स्यात्" इन वाक्यों से स्पष्ट किया है।

नियमसार (गा.१८) में वे केवली और श्रुतकेवली के उपदेश के अनुसार जीव का स्वरूप निश्चय और व्यवहारनय से इस प्रकार वर्णित करते हैं-

कत्ता भोत्ता आदा पोगलकम्मस्स होदि ववहारो।

कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो॥

अर्थात् व्यवहारनय से जीव पुद्गलकर्मों का कर्ता-भोक्ता है और निश्चयनय से कर्मजनित मोहरागादि भावों का।

यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द ने जीव को जो पुद्गलकर्मों का कर्ता-भोक्ता बतलाया है, वह असद्भूत-व्यवहारनय का कथन है। यह कथन उन्होंने केवली और श्रुतकेवली के उपदेश के आधार पर किया है, जैसा कि नियमसार के मंगलाचरण से स्पष्ट है। क्या यह उनका एवं केवली-श्रुतकेवली का अज्ञानमय अनादिरूढ़ व्यवहार है या निमित्तनैमित्तिक भाव की अपेक्षा किया गया ज्ञानमय व्यवहार? केवली, श्रुतकेवली एवं कुन्दकुन्द जैसे आचार्य के विषय में तो अज्ञानमय व्यवहार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः स्पष्ट है कि यह श्रुतज्ञान के अवयवभूत असद्भूत-व्यवहारनय पर आश्रित कथन है।

समयसार (गाथा ५६, ६०, ६७, ३७१)। में आचार्यश्री ने स्वयं 'जीव रागी, द्वेषी, मोही तथा शरीर से अभिन्न है' इस उपदेश को जिनवर का उपदेश बतलाया है।

ए-2, शाहपुरा, भोपाल (म.प्र.)

नाच्छादयति कौपीनं न दंशमशकापहम्।

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं पाण्डित्यं धर्मवर्जितम्॥

कुत्ते की पूँछ न तो उसके गुप्तांग (मलद्वार) को ढँकती है, न ही उसे डाँस-मच्छरों से बचाती है, इसलिए वह व्यर्थ है। इसी प्रकार धर्मरहित पाण्डित्य न तो मनुष्य को पाप से बचाता है, न पुण्य प्राप्त कराता है, अतः वह कुत्ते की पूँछ के समान व्यर्थ है।

# विद्वानों का मूल्याङ्कन

डॉ. शीतलचन्द्र जैन

जयपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'दिगम्बर जैन ज्योति' वर्ष 6 अंक 12 के पृ. 8 पर बड़े-बड़े अक्षरों में विज्ञापन टाइप में लिखा है कि "कर्णधार और विद्वान् देते नहीं लेते हैं" उक्त पंक्ति को पढ़कर मेरी नजरों के सामने कुछ ऐसे विद्वानों के चेहरे उपस्थित हो गये, जिन्होंने समाज से कुछ नहीं लिया, बल्कि सब कुछ समाज को और जिनवाणी को भेंट कर दिया। मुझे पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, सादूमल का स्मरण आया, जो ब्यावर, राजस्थान में रहकर श्रुताराधना करते थे। मैंने उनके विषय में किसी सन्त के मुखारविन्द से सुना था कि पण्डित जी किसी ग्रन्थ का अनुवाद कर रहे थे और उन्हें किसी शब्द को देखने के लिये शब्दकोश की आवश्यकता महसूस हुई। इस बात को लेकर काफी व्यग्र थे कि हाथ में पैसा नहीं, शब्दकोश खरीदें कैसे? उनकी धर्मपत्नी ने व्यग्रता का कारण पूछा, उन्होंने सब कुछ बता दिया, तब उनकी धर्मपत्नी ने कहा- "आप व्यग्र मत होइये मेरे पास स्वर्ण की एक वस्तु है, इसको बेचकर शब्दकोश ले आइये। ये स्वर्ण जिनवाणी की सेवा में काम आयेगा, इसका इससे अच्छा और क्या उपयोग होगा? धन्य हैं वे विद्वान् जो इस प्रकार स्वाभिमान से जीते थे और महाधन्य हैं उनकी धर्मपत्नी जो इतना सन्तोष और जिनवाणी के प्रति समर्पणभाव रखती थीं। ऐसे अनेक विद्वान् थे और अभी भी मौजूद हैं और रहेंगे, जिन्होंने समाज के सामने हाथ नहीं फैलाये और जिनवाणी की सेवा करते थे और कर रहे हैं।

मैं कुछ पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ता हूँ और मुनिराजों के प्रवचनों को सुनता हूँ, तो विद्वानों की आलोचना सुन कर ऐसा लगने लगता है, जैसे हमने विद्वान् बनकर कोई अपराध किया हो और जो मैं विद्वान् तैयार कर रहा हूँ, तो कोई अपराध तो नहीं कर रहा हूँ! मैं बहुत प्रयास करता हूँ कि किसी पत्रिका की या पत्रकार की आलोचना न करूँ, परन्तु जब किसी की सीमा पार हो जाती है, तो मुझे बाध्य होकर लिखना पड़ता है। अभी दिशाबोध अप्रैल 2008 के अंक में ऐसा अशिष्ट चिन्तन लिखा गया, जो पढ़कर मुझे काफी अरुचिकर लगा। आदरणीय पत्रकार/साहित्यकार विद्वान् ने पृ. 12 पर विद्वानों की

जो उपमा दी है वह लिखने में मुझे स्वयं शर्म आती है। पत्रकार महोदय ने जो साहित्य सृजन किया उस साहित्य में यथार्थ साधु और अयथार्थ साधु का भेद न कर सभी को एक तराजू पर तौल डाला, क्योंकि तौलने-वाले को कीमत से मतलब! इसी प्रकार सभी विद्वानों को एक तराजू पर तौल डाला, जो उचित नहीं है। यदि किसी विद्वान् में आप अवगुण देखते हैं, तो आप उसे व्यक्तिगत पत्र लिखें या विद्वानों की संस्थाओं के मंच से कहिये और यदि आप में साहस है तो प्रमाण और युक्तिपूर्ण ढंग से विद्वान्/विद्वानों के नाम रेखाङ्कित कर अगले चिन्तन में स्पष्ट करें, जिससे हम संस्था के माध्यम से स्पष्टीकरण कर सकें, अन्यथा विद्वानों के प्रति इतनी घटिया शब्दावली का प्रयोग मत करें। आलोचना करना सरल है। आप पनप रही विकृति के प्रति उचित सुझाव और चिन्तन दें। आजकल अनेक पत्र आलोचना और प्रत्यालोचना निकाल कर सस्ती वाहवाही लूट रहे हैं। इसी प्रकार कुछ लेखक भी निषेधात्मक और चाटुकारी लेख लिखकर समाज को भ्रमित कर रहे हैं, जो स्वस्थ पत्रिकारिता नहीं है।

दिशाबोध के इसी अंक में एक आदरणीय प्रतिष्ठाचार्य महोदय ने एक विचारणीय पक्ष रखा, जिसमें लिखा है कि एक प्रतिष्ठाचार्य की योग्यता क्या होना चाहिये और आगे लिखा है कि ब्रह्मचारीगण तो झोला लेकर नगर-नगर घूमते हुये प्रतिष्ठायें विधान आदि कराते हैं।

मेरा विनम्र सुझाव है कि भारतवर्षीय श्रमण संस्कृति परीक्षालय सांगानेर ने प्रतिष्ठाचार्य पाठ्यक्रम बनाया है और वर्तमान में जितने युवा प्रतिष्ठाचार्य हैं, उनकी परीक्षा आप स्वयं लें, फिर स्वयं देखें कितने प्रतिष्ठाचार्यों में व्याकरण, न्याय, मंत्र, ज्योतिष, सिद्धान्त का ज्ञान है? मेरा विश्वास है कि परम्परागत प्रतिष्ठाचार्यों की अपेक्षा नवोदित युवा प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारीगण ठीक हैं। अन्यथा इसका निर्णय परीक्षा से ही सम्भव है। व्यर्थ में नवोदित युवा प्रतिष्ठाचार्यों एवं ब्रह्मचारियों के प्रति अनास्था का वातावरण बनाना उचित नहीं है।

दिशाबोध के इसी अंक में एक प्रतिष्ठित विद्वान्

ने लिखा है कि विद्वान् भी अर्थप्रधानी बन गया, उसमें नैतिक बल चाहिये। ऐसी टिप्पणी करनेवालों को विद्वान् एवं प्रतिष्ठाचार्य में अन्तर देखना होगा। आज का कोई भी विद्वान् समाज के आश्रित नहीं है, परन्तु समाज को जो कुछ बनता है वह देता ही है, लेता कुछ नहीं। इस टेक्नालॉजी के युग में कोई भी अभिभावक अपने बेटा-बेटी को विद्वान्-विदुषी नहीं बनाना चाहता और जो विद्वान् बने हैं उनके परिश्रम को कोई नहीं जानता। किसी नीतिकार ने ठीक ही कहा है-

विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।

न हि बन्ध्या विजानाति गुर्वीप्रसववेदनाम्॥

अर्थात् विद्वान् के परिश्रम को विद्वान् ही जानता है, जिस तरह प्रसव की गहन वेदना को प्रसव करनेवाली स्त्री ही अनुभव कर सकती है, जान सकती है, बन्ध्या नहीं।

आज का श्रावक प्रतिष्ठाचार्य को ही विद्वान् मान बैठा, क्योंकि सिद्धान्त के ज्ञाता विद्वान् अंगुली पर गिनने योग्य हैं। आज समाज को प्रतिष्ठाचार्यों की आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान में 75 प्रतिशत मुनिराज क्रियाकाण्डों में श्रावकों को उलझा कर रखते हैं। यही कारण है कि पञ्चकल्याणकों और अनुष्ठानों की चकाचौंध है। इन अवसरों पर विद्वानों के द्वारा प्रवचन नहीं कराये जाते हैं, अपितु कोई विद्वान् भूल से बुला लिया जाता है, तो सायंकाल बड़ी मुश्किल से 15-25 मिनट का समय दिया जाता है। इन अनुष्ठानों में पुजारियों का महत्त्व ज्यादा होता है और सैद्धान्तिक विद्वान् का महत्त्व कम।

आज प्रतिष्ठाचार्य पूर्णरूपेण समाजाश्रित हैं और समाज प्रतिष्ठाचार्य एवं सङ्गीतकार पर आश्रित है। विद्वान्

की स्थिति तो ऐसी है कि पर्युषण पर्व पर सङ्गीतकार और विद्वान् दोनों जाते हैं, तो उसमें यह कहावत चरितार्थ होती है कि-

फूटी आँख विवेक की क्या करें जगदीश।

कंचनियाँ को तीन सौ और पण्डितजी को तीस॥

अतः उक्त परिस्थितियों को देखते हुये पत्रकारों, साहित्यकारों, नेतृत्ववर्ग, मुनिराजों एवं श्रावकों से निवेदन है कि विद्वानों में एवं प्रतिष्ठाचार्यों में भेद करके ही कलम चलाया करें। आज समाज सङ्गीतकार को इक्कीस हजार से इक्यावन हजार तक न्यूनतम भेंटराशि नाच गाकर, प्रसन्न होकर देती है, तब प्रतिष्ठाचार्य को इससे कम देगी तो उसका असम्मान नहीं होगा? विचार करें वह सम्मान राशि है, याचना नहीं है। विद्वान् एक ग्रन्थ की टीका एक वर्ष में या एक आलेख 10 दिन में लिखता है, तो समाज क्या देती है? अभी भी कई विद्वान् जिनवाणी के संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में लगे हुये हैं, उनका समाज क्या मूल्यांकन कर रही है?

अन्त में पत्रिकाओं के सम्पादकों से निवेदन है कि लेखक ने जो कुछ लिख दिया, वही नहीं छाप देना चाहिये, अपितु यह भी देखना चाहिये कि इस लेख को छापने से समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यदि अच्छा प्रभाव पड़े, तो अवश्य छापना चाहिये, अन्यथा लेखक, जिस व्यक्तिविशेष की आलोचना कर रहा है, उसका नाम छापे, जिससे वह व्यक्ति समझे और उन विकृतियों से दूर हो सके। कर्णधार भी समाज से लेते नहीं, देते ही हैं। इस पर आगे लिखूँगा।

प्राचार्य, श्री दि. जैन आचार्य  
संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर

### श्री सुरेशचन्द्र जैन वरगीवाले सम्मानित

विश्व वंदनीय भगवान् महावीर की जयंती के पावन प्रसंग पर अहिंसा सम्मेलन में जैन नवयुवक सभा, जैन- पंचायत सभा एवं समग्र जैन- समाज की ओर से राष्ट्र में शाकाहार अहिंसा धर्म का शंखनाद करनेवाले श्री सुरेशचंद्र जैन वरगीवालों को अहिंसा मंच-अहिंसा सम्मान से अलंकृत किया गया। आपको दिल्ली से अहिंसा इंटरनेशनल अवार्ड से भी अलंकृत किया गया है।

चन्दुलाल जैन, हनुमानताल, जबलपुर

### उज्ज्वल यश

बारामती के व्यापारी श्री कल्पेश राजुलाल शहा एवं सौ. संगीता कल्पेश शहा (सोनगीरकर) की पुत्री कु. तेजल कल्पेश शहा १२ वीं की परीक्षा में अंग्रेजी मध्यम से तुलजाराम चतुरचंद विद्यालय बारामती से कॉमर्स (वाणिज्य शाखा) शाखा से 82.17% अंक प्राप्त करके संपूर्ण बारामती तहसील एवं विद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। दि. जैन समाज को यह गौरवास्पद है।

# कायोत्सर्ग एवं णमोकार मंत्र

पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन

कर्मसहित जीव निरन्तर संसारभ्रमण कर दुःख भोगता रहता है। इन दुःखों से छूटने के लिए तपपूर्वक कर्मनिर्जरा करके भावविशुद्धि से वर्तमान में कर्मबन्ध की प्रक्रिया से बचना ही श्रेयस्कर उपाय है। तप से कर्मनिर्जरा होती है। तप के बारह भेदों में क्रमशः प्रथम तप की अपेक्षा द्वितीय तप के भेद से ज्यादा कर्मनिर्जरा होती है, इसी क्रम से सबसे ज्यादा कर्मनिर्जरा ध्यान से होती है। ध्यानतप से पहले व्युत्सर्ग तप है। वह जहाँ कर्मनिर्जरा का साधन है, वहीं ध्यानतप का कारण भी है। व्युत्सर्ग-बाहर के क्षेत्र, वास्तु आदि का और आभ्यन्तर में कषाय आदि का अथवा नित्य या अनित्य काल के लिए शरीर का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है। इसे कायोत्सर्ग भी कहते हैं।

**कायोत्सर्ग-** जो दैवसिक, रात्रिक, चातुर्मासिक आदि दोषों के शमनार्थ किया जाता है, अथवा शरीर से ममत्व छोड़कर उपसर्ग आदि को जीतता हुआ। अन्तर्मुहूर्त, एक दिन, मास, व वर्ष पर्यन्त निश्चल खड़े रहना कायोत्सर्ग है।

कायाईपरदब्बे स्थिरभावं परिहरन्तु अप्पाणं।

तस्स हवे तणुसग्गं जो झायइ णिव्विअप्पेण ॥ २ ॥

नियमसार / अधिकार ८

अर्थात् कायादि परद्रव्यों में स्थिरभाव छोड़कर जो आत्मा को निर्विकल्प रूप से ध्याता है, उसे कायोत्सर्ग कहते हैं।

देस्सिय णियमादिसु जहुत्तमाणेण उत्तकालम्हि।

जिणगुणचिंतणजुत्तो काओसग्गो तणुविसग्गो ॥ २८ ॥

मूलाचार

अर्थात् दैवसिक निश्चित क्रियाओं में यथोक्त काल प्रमाण पर्यन्त उत्तमक्षमा आदि जिनगुणों की भावना सहित देह में ममत्व को छोड़ना कायोत्सर्ग है।

परिमितकालविषया शरीरे ममत्वनिर्वृत्तिः कायोत्सर्गः।

राजवार्तिक ६ / २४ / ११ / ५३०।

अर्थात् परिमित काल के लिए शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है।

ज्ञात्वां योऽचेतनं कायं नश्वरं कर्मनिर्मितम्।  
न तस्य वर्तते कार्ये कायोत्सर्गं करोति सः ॥

योगसार-५ / ५२

अर्थात् देह को अचेतन, नश्वर, व कर्म निर्मित समझकर जो उसके पोषण आदि के अर्थ कोई कार्य नहीं करता वह कायोत्सर्ग का धारक है।

**कार्योत्सर्ग के भेद**

आसन एवं चिन्तन की अपेक्षा कायोत्सर्ग के चार भेद हैं।

उड्ढिदउड्ढिद उड्ढिदणिविड्ढ उवविड्ढउड्ढिदो चैव।

उवविड्ढणिविड्ढोवि य काओसग्गो चदुड्ढाणो ॥ ६७३ ॥

मूलाचार

अर्थात् उत्थितोत्थित, उत्थितनिविष्ट, उपविष्टोत्थित और उपविष्टनिविष्ट इस प्रकार कायोत्सर्ग के चार भेद हैं।

१. उत्थितोत्थित- जो कायोत्सर्ग में खड़ा हुआ धर्म, शुक्ल ध्यानों को करता है, वह उत्थितोत्थित कार्योत्सर्ग है।

२. उत्थितनिविष्ट- जो कायोत्सर्ग में खड़ा हुआ आर्त, रौद्र ध्यान का करता है, वह उत्थितनिविष्ट कायोत्सर्ग है।

३. उपविष्टोत्थित- जो बैठे हुए धर्म, शुक्ल ध्यानों को ध्याता है, वह उपविष्टोत्थित कायोत्सर्ग है।

४. उपविष्टोपविष्ट- जो बैठा हुआ आर्त, रौद्र ध्यानों का अवलंबन करता है, वह उपविष्टोपविष्ट कायोत्सर्ग है।

कार्योत्सर्ग के अन्य प्रकार से तीन भेद हैं-

मनसा शरीरे ममेदं भावनिवृत्तिः मानसः कायोत्सर्गः।  
प्रलम्बभुजस्य चतुरङ्गुलमात्रपादान्तरस्य निश्चलावस्थानं कायेन कार्योत्सर्गः ॥

(भगवती आराधना / विजयोदया टीका / गा. ५०९)

अर्थात् मन से शरीर में ममेदं (मम+इदं) यह मेरा है, की बुद्धि की निवृत्ति मानस कायोत्सर्ग है। मैं शरीर का त्याग करता हूँ, ऐसा वचनोच्चार करना वचन-



कृत कायोत्सर्ग है। बाहु नीचे छोड़कर चार अंगुल मात्र का अन्तर दोनों पैरों में रखकर निश्चल खड़े होना शरीर के द्वारा कायोत्सर्ग है।

निक्षेपों की अपेक्षा कायोत्सर्ग के छह भेद हैं-

१. नाम कायोत्सर्ग- सावद्य नाम करने से लगे हुए दोषों की विशुद्धि के लिये कायोत्सर्ग किया जाता है या किसी का नाम कायोत्सर्ग रखना नामकायोत्सर्ग है।

२. स्थापना कायोत्सर्ग- पाप पूर्ण स्थापना से लगे हुए दोषों की विशुद्धि के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है अथवा कायोत्सर्गपरिणत प्रतिबिम्ब स्थापना कायोत्सर्ग है।

३. द्रव्य कायोत्सर्ग- सावद्य द्रव्य के सेवन से लगे अतिचारों की विशुद्धि के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है, वह द्रव्य कायोत्सर्ग है।

४. क्षेत्र कायोत्सर्ग- सावद्य क्षेत्र के सेवन से लगे दोषों की विशुद्धि के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है, वह क्षेत्र कायोत्सर्ग है।

५. काल कायोत्सर्ग- सावद्य काल में आचरण करने से लगे हुए दोषों की विशुद्धि के लिए किया गया कायोत्सर्ग काल, कायोत्सर्ग है। अथवा कायोत्सर्ग करनेवालों से सहित काल को कालकायोत्सर्ग कहते हैं।

६. भाव कायोत्सर्ग- मिथ्यात्वादिसंबंधी अतिचारों के शोधन के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है, वह भावकायोत्सर्ग है, अथवा कायोत्सर्ग करनेवाले शास्त्र का जो ज्ञाता उस शास्त्र में उपयुक्त है, वह आगमभाव-कायोत्सर्ग है।

कायोत्सर्ग की संख्या और उसके श्वासोच्छ्वास-

अष्टाविंशतिसंख्यानाः कायोत्सर्गा मता जिनैः।

अहोरात्रगताः सर्वे षडावश्यककारिणाम् ॥ ६६ ॥

(अमितगतिश्रावकाचार)

अर्थात् छहों आवश्यक करनेवालों के दिन और रात्रि संबंधी सर्व कायोत्सर्ग अट्ठाईस कहे हैं।

स्वाध्याये द्वादश प्राज्ञैर्वन्दनायां षडीरिताः।

अष्टौ प्रतिक्रमे योग भक्तौ तौ द्वावुदा हतौ ॥ ६७ ॥

(अमितगतिश्रावकाचार)

अर्थात् स्वाध्याय करने में बारह, वन्दना में छह, प्रतिक्रमण करते समय आठ, और योग भक्ति करते समय दो कायोत्सर्ग कहे हैं।

उच्छ्वासःस्युस्तनूत्सर्गे नियमान्ते दिनादिषु।

पंचस्वष्टशतार्धत्रिचतुःपंचशतप्रमाः ॥ ७२ ॥

अनगारधर्मामृत

अर्थात् दिनसंबंधि-कायोत्सर्ग में एक सौ आठ, रात्रिसंबंधि-कायोत्सर्ग में चौवन, पाक्षिक में तीन सौ, चातुर्मासिक में चार सौ और वार्षिक कायोत्सर्ग में पाँच सौ उच्छ्वास होते हैं।

मूत्रोच्चारार्धवभक्ताहंत्साधुशय्याभिवन्दने।

पंचाग्रा विंशतिस्ते स्युः स्वाध्यायादौ च सप्तयुक् ॥ ७३ ॥

अनगार धर्मामृत

अर्थात् मूत्र और मल का त्याग करके, एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँचने पर, आहार करने पर, अर्हत् शय्या (निर्वाणकल्याण, समवशरण, केवलज्ञान उत्पत्ति, तप-कल्याणक एवं जन्मभूमि आदि स्थान) और साधुशय्या (किसी साधु के समाधिस्थान) पर जाकर लौटने पर पच्चीस उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करना चाहिए। मन में विकार उत्पन्न होने पर तत्क्षण सत्ताईस उच्छ्वास प्रमाण, प्राणीवधसंबंधी, असत्यालापसंबंधी, चोरी संबंधी, मैथुन संबंधी, परिग्रह संबंधी, दोष लगने पर एक सौ आठ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करना चाहिए।

कायोत्सर्ग का काल

कायोत्सर्गस्य मात्रान्तर्मूर्हूर्तोऽल्पा समोत्तमा।

शेषा गाथात्र्यंशचिन्तात्मोच्छ्वासैर्नैकथा मिता ॥ ७१ ॥

अनगार धर्मामृत

अर्थात् कायोत्सर्ग का जघन्य काल अन्तर्मूर्हूर्त और उत्कृष्ट काल एक वर्ष प्रमाण है। शेष अर्थात् मध्यम काल का प्रमाण गाथा (णमोकार मंत्र) के तीन अंशों के चिन्तन में लगनेवाले उच्छ्वासों के भेद से अनेक प्रकार हैं-

अष्टतोत्तरशतोच्छ्वासः कायोत्सर्गः प्रतिक्रमे।

सान्ध्ये प्राभातिके चार्धमन्यस्तत्सप्तविंशतिः ॥ ६८ ॥

अमितगति श्रावकाचार

अर्थात् सान्ध्य (सायं काल) संबंधी प्रतिक्रमण करते समय एक सौ आठ श्वासोच्छ्वासवाला कायोत्सर्ग किया जाता है।

प्रभातकालसंबंधी प्रतिक्रमण में उससे आधा अर्थात् चौवन श्वासोच्छ्वासवाला कायोत्सर्ग कहा गया है एवं अन्य सर्व कायोत्सर्ग सत्ताईस श्वासोच्छ्वास कालप्रमाण कहे गये हैं।

सप्तविंशतिरुच्छ्वासाः संसारोन्मूलनक्षमे।

सन्ति पंचनमस्कारे नवधा चिन्तिते सति ॥ ६९ ॥

अमितगति श्रावकाचार।

अर्थात् संसार के उन्मूलन में समर्थ पंचनमस्कार मंत्र के नौ बार चिन्तन करने पर सत्ताईस श्वासोच्छ्वास माने जाते हैं।

श्वास- बाहर से अन्दर की और वायु खींचने को श्वास कहते हैं।

उच्छ्वास- भीतर की ओर से बाहर की ओर वायु निकालने को उच्छ्वास कहते हैं।

कायोत्सर्ग की विधि

जिनेन्द्रमुद्रया गाथां ध्यायेत् प्रीतिविकस्वरे,

हृत्पंकजे प्रवेशान्तर्निरुध्य मनसाऽनिलम् ॥ २२ ॥

पृथग् द्विद्वयेकगाथांश्चिन्तान्ते रेचयेच्छनैः।

नवकृत्वः प्रयोक्तैवं दहत्यंहः सुधीर्महत् ॥ २३ ॥

अनगारधर्मा मृत / अध्याय ९

पूरा णमोकार मंत्र एक गाथारूप है। उसके तीन अंश करके कायोत्सर्ग के समय, चिन्तन करना चाहिए। णमो अरिहंताणं, णमो, सिद्धाणं के साथ प्राणवायु अन्दर ले जाकर उसका चिन्तन करें और चिन्तन के अंत में वायु धीरे-धीरे बाहर निकालें। फिर णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं के साथ प्राणवायु को अन्दर ले जाकर हृदय-कमल में इसका चिन्तन करें, और चिन्तन के अन्त में धीरे धीरे वायु बाहर निकालें। फिर णमो लोए सव्वसाहूणं के साथ प्राणवायु अन्दर ले जावें और चिन्तन के अन्त में धीरे-धीरे बाहर निकालें। इस प्रकार तीन श्वासोच्छ्वास में एक बार और सत्ताइस श्वासोच्छ्वासों में नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ना चाहिए। इस प्रकार की विधि अन्य आचार्यों ने भी कही है। यथा-

कुंभकं कुर्वन्नेव णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं इति गाथांशद्वयं जप्वान्ते रेचकं कुर्यात्। अनेनैव विधिना णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं इति गाथांशद्वयं तथा णमो लोए सव्व साहूणं इत्येकांशं जपेत् ॥ प्रतिष्ठा तिलक (हिन्दी अनुवाद) पृ. १३।

कुंभकयोग करते समय णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं गाथा के दो अंशों का जाप करके रेचक अर्थात् रोकी हुई वायु को छोड़े। इसी विधि से णमो आइरियाणं णमो उवज्झायाणं इन दो गाथांशों को और णमो लोए सव्व साहूणं इस गाथांश का जाप करें।

पृथक् द्विद्वैकवाक्यान्तं मुक्त्वोच्छ्वासं जपेनव।

वारान् गाथां प्रतिक्रम्य निषिद्यालोचयेत्ततः ॥ ३७३ ॥

प्रतिष्ठापाठ- आचार्य जयसेन

अर्थात् णमोकार मंत्र के पंच पदनकूं दोग दोग वाक्य का उत्तर एक वाक्य का अन्त में उच्छ्वास छोड़ि नववार जपे। आदि-कायोत्सर्ग एवं प्राणायाम, ध्यान की सिद्धि और चित्त की स्थिरता के लिए प्राणायाम प्रशंसनीय है। इसके तीन भेद है।

त्रिधा लक्षणभेदेन संस्मृतः पूर्वसूरिभिः।

पूरकः कुम्भकश्चैव रेचकस्तदनन्तरम् ॥

ज्ञानार्णव २९/३

अर्थात् पूर्वाचार्यों ने पवन के स्तम्भनरूप प्राणायाम को लक्षण भेद से तीन प्रकार कहा है- पूरक, कुम्भक, और रेचक।

१. पूरक

द्वादशान्तात्समाकृष्य य समीरः प्रपूर्यते।

स पूरक इति ज्ञेयो वायुविज्ञानकोविदैः ॥

ज्ञानार्णव २९/४

अर्थात् तलुवे के छिद्र से अथवा द्वादश अंगुल पर्यन्त से वायु को खींचकर अपनी इच्छानुसार अपने शरीर में पूरण करे उसे वायुविज्ञानी पंडितों ने पूरक पवन कहा है।

२. कुंभक

निरुणाद्धि स्थिरीकृत्य श्वसनं नाभियंकजे।

कुम्भवन्निर्भरः सोऽयं कुम्भकः परिकीर्तितः ॥

ज्ञानार्णव २९/५।

अर्थात् उस पूरक पवन को स्थिर करके नाभि-कमल में घड़े की तरह भर कर रोकें, नाभि से अन्य जगह चलने न दे, उसे कुंभक कहते हैं।

३. रेचक

निःसार्यतेऽतियत्नेन यत्कोष्ठाच्छ्वसनं शनैः।

स रेचक इति प्राज्ञैः प्रणीतः पवनागमे ॥

ज्ञानार्णव २९/६।

अर्थात् जो अपने कोष्ठ से पवन को अति यत्न से बाहर निकाले उसको पवनाभ्यास के शास्त्रों में विद्वानों ने रेचक कहा है।

प्राणायाम की इस विधि से ही आचार्यों ने कायोत्सर्ग के श्वासोच्छ्वासों का निर्धारण किया है, जिसमें णमोकार मंत्र के जाप की युति मन की चंचलता को रोककर

स्थिरता प्रदान करती है, जो ध्यान की सिद्धि और कर्मनिर्जरा का साधन है।

**कायोत्सर्ग का स्वामी और मुद्रा**

मोक्षार्थी जितनिद्रकः सुकरणः सूत्रार्थविद् वीर्यवान्  
शुद्धात्मा बलवान् प्रलम्बितभुजायुग्मो सदास्तेऽचलम्।

ऊर्ध्वजुश्चतुरङ्गुलान्तरसमाग्रांधिर्निषद्भाभिधा-  
द्याचारात्ययशोधनादिह तनूत्सर्गः स षोढा मतः॥

अनगारधर्मा मृत / ८ / ७०।

अर्थात् मुक्ति का इच्छुक, निद्रा को जीतनेवाला, शुभक्रिया और परिणामों से युक्त, आगम के अर्थ का ज्ञाता, वीर्यवान्, बलवान्, असंयत, सम्यग्दृष्टि आदि भव्य, कायोत्सर्ग करनेवाला श्रेष्ठ पात्र कहा है।

दोनों हाथों को नीचे लटकाकर और दोनों चरणों के मध्य में चार अंगुल का अंतर देकर, तथा उनके अग्रभाग को बिल्कुल समरूप में रखते हुए निश्चल खड़े होकर कायोत्सर्ग करना चाहिए। हाथ, पैर, गर्दन, आँख, भों आदि को निश्चल रखना विशुद्ध कायोत्सर्ग मुद्रा है। इससे ही कायोत्सर्ग की सिद्धि है। दोषसहित कायोत्सर्ग से कार्य की सिद्धि नहीं होती है। बैठकर भी कायोत्सर्ग किया जा सकता है।

**कायोत्सर्ग के अतीचार-** कायोत्सर्ग के बत्तीस अतीचार हैं।

१. घोटक दोष- घोड़े के समान एक पैर उठाकर कायोत्सर्ग करना।

२. लता दोष- वायु से कम्पित लता के समान शरीर के ऊपरी भाग को सर्व ओर घुमाते हुए कायोत्सर्ग करना।

३. स्तम्भ-कुड्य दोष- स्तम्भ, भित्ति आदि का आश्रय लेकर कायोत्सर्ग करना।

४. पट्टिका दोष- पाटे आदि के ऊपर खड़े होकर कायोत्सर्ग करना।

५. माला दोष- शिर पर माला का आलंबन लेकर कायोत्सर्ग करना।

६. निगड दोष- बेड़ी से बँधे हुए पुरुष के समान टेढ़े पैर रखकर कायोत्सर्ग करना।

७. किरातयुवति दोष- दोनों हाथों से भीलनी के समान जघनभाग को ढककर खड़े होकर कायोत्सर्ग करना।

८. शिरोनमन दोष- शिर को बहुत नीचे झुकाकर कायोत्सर्ग करना।

९. उन्नमन दोष- शिर को बहुत ऊँचा उठाकर कायोत्सर्ग करना।

१०. धात्री दोष- जैसे धाय, बालक को दूध पिलाने के लिए अपने स्तन को ऊँचा उठाती है, उसी प्रकार अपने वक्षस्थल को ऊँचा उठाकर कायोत्सर्ग करना।

११. वायस दोष- काक के समान चंचल नेत्र के द्वारा सर्व ओर पार्श्वभाग में देखते हुए कायोत्सर्ग करना।

१२. खलीन दोष- खलीन (लगाम) से पीड़ित घोड़े के समान कायोत्सर्ग करना।

१३. गज दोष- जिसके कंधे पर महावत बैठा है ऐसे हाथी के समान ग्रीवा को ऊँची नीची करते हुए कायोत्सर्ग करना।

१४. कपित्थ दोष- हाथ में कपित्थ लिए के समान मुट्ठी बाँधकर कायोत्सर्ग करना।

१५. शिरः कम्पित दोष- शिर को कँपाते हुए कायोत्सर्ग करना।

१६. मूक दोष- गूँगे पुरुष के समान अंगों से संकेत करते हुए कायोत्सर्ग करना।

१७. अंगुली दोष- अंगुली गिनते हुए कायोत्सर्ग करना।

१८. भ्रूदोष- भ्रुकुटि नचाते हुए कायोत्सर्ग करना।

१९. दिग्वेक्षण दोष- दिशाओं को देखते हुए कायोत्सर्ग करना।

२०. मदिरापायी दोष- मदिरापान से व्याकुल पुरुष के समान घूमते हुए कायोत्सर्ग करना।

२१. ग्रीवोर्ध्वनयन दोष- ग्रीवा को अधिक ऊँची करके कायोत्सर्ग करना।

२२. ग्रीवाधोनयन दोष- ग्रीवा को अधिक नीची करके कायोत्सर्ग करना।

२३. निष्ठीवन दोष- कायोत्सर्ग करते हुए थूकना।

२४. वपुःस्पर्शन दोष- कायोत्सर्ग करते समय अंगों का स्पर्श करना।

२५. प्रपंचबहुल दोष- छल प्रपंच के भाव के साथ कायोत्सर्ग करना।

२६. विधिन्यून दोष- आगमोक्त विधि से हीन कायोत्सर्ग करना।

२७. वयोऽपेक्षादिवर्जन दोष- अपनी आयु की

अपेक्षा न करके मात्रा से अधिक कायोत्सर्ग करना।

२८. कालापेक्षव्यतिक्रान्ति दोष- कायोत्सर्ग के काल की अपेक्षा का उलंघन कर कायोत्सर्ग करना।

२९. व्याक्षेपासक्तचित्त दोष- मन के क्षोभकारक कार्यों में चित्त लगाते हुए कार्योंत्सर्ग करना।

३०. लोभाकुलित दोष- लोभ से आकुलित चित्त होकर कायोत्सर्ग करना।

३१. पापकार्योद्यम दोष- पापकार्य में उद्यमशील होते हुए कायोत्सर्ग करना।

३२. मूढदोष- कर्तव्य, अकर्तव्य के ज्ञान से रहित पुरुष का कायोत्सर्ग करना।

कर्म निर्जरा के इच्छुक मुमुक्षुजनों को कायोत्सर्गविधि के इन बत्तीस अतीचारों का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

(अनगारधर्माभृत / ८ / ११२-१२२)।

**कायोत्सर्ग का फल**

व्युत्सृज्य दोषान् निःशेषान् सदध्यानी स्यात्तनूत्सृतौ।  
सहेताऽप्युपसर्गोमीन् कर्मैवं भिद्यते तराम्॥

अनगारधर्माभृत / ८ / ७६।

अर्थात् कायोत्सर्ग करते समय देवकृत, मनुष्यकृत या तिर्यचकृत कोई उपसर्ग आ जाये तो उसे सहन करना चाहिए। ऐसे समय में भी धर्म या शुक्ल ध्यान ही करना चाहिए। जो साधु परिषह और उपसर्ग से विचलित न होकर उसे धीरता से सहन करते हैं, उनका कर्मबन्धन शिथिल होकर छूट जाता है। जो साधु भक्तिपूर्वक निर्दोष कायोत्सर्ग करता है, उसके पूर्वभव में अर्जित कर्म शीघ्र ही निर्जीर्ण हो जाते हैं। कायोत्सर्ग के समय वायु को अन्दर रोकने से मन की स्थिरता होती है।

विकल्प्या न प्रसूयन्ते विषयाशा निवर्तते।

अन्तः स्फुरति विज्ञानं तत्र चित्ते स्थिरीकृते॥

ज्ञानार्णव २९/११।

अर्थात् हृदयकमल की कर्णिका में पवन के साथ चित्त को स्थिरकरने पर मन में विकल्प नहीं उठते और विषयों की आशा भी नष्ट हो जाती है। तथा अंतरंग में विशेष ज्ञान का प्रकाश होता है। इस पवन के साधन से मन को वश में करना ही इसका फल है।

एवं भावयतः स्वान्ते यात्यविद्या क्षयं क्षणात्।

विमदीस्युस्तथाक्षाणि कषायरिपुभिः समम्॥

ज्ञानार्णव २९/१२।

अर्थात् मन को वश में करने की भावना करते हुए पुरुष के अविद्या, तो क्षण मात्र में क्षय हो जाती है। इन्द्रियाँ मदरहित हो जाती हैं, साथ ही कषायें क्षीण हो जाती हैं।

स्मरगरलमनोविजयं समस्तरोगक्षयं वपुःस्थैर्यम्।

पवनप्रचारचतुरः करोति योगी न संदेहः॥

ज्ञानार्णव २९/१०१।

अर्थात् पवनप्रचार करने में चतुरयोगी कामरूपी विषयुक्त मन को जीतता है। समस्त रोगों को क्षय करके शरीर में स्थिरता करता है, इसमें संदेह नहीं है। पवन को साधन करके मन को वश में करना ही कायोत्सर्ग का प्रयोजन है। कायोत्सर्ग में शरीर से ममत्व छोड़कर प्राणायाम विधि से श्वास को लेते हुए णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं ये दो पद बोलकर वायु को अपनी सामर्थ्यानुसार अन्दर रोककर अरिहंत-सिद्ध के माध्यम से अपने स्वरूप का चिंतन करे, पश्चात् वायु को छोड़ दे। दूसरे श्वास में णमो आइरियाणं, णमो उवञ्जायाणं ये दो पद बोलकर पूर्ववत् वायु को छोड़े एवं तीसरे श्वास में णमो लोए सव्व साहूणं इस पूरे पद को बोलते हुए, पूर्ववत् क्रिया करे, इस प्रकार तीन श्वासोच्छ्वास में एक बार णमोकार मंत्र का स्मरण कर कायोत्सर्ग, जाप आदि करने से मन स्थिर होता है। कायोत्सर्ग के लिए दोनों हाथ नीचे करके पैरों में चार अंगुल का अंतर रखकर पैरों के अग्रभाग समान करना चाहिए। यदि बैठकर कायोत्सर्ग करना हो तो पदासन में बायें हाथ के ऊपर दाया हाथ रखकर कायोत्सर्ग करना चाहिए। कायोत्सर्ग में वायु के ग्रहण करने, रोकने और छोड़ने की प्रक्रिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसके द्वारा ही मन की स्थिरता बनती है एवं कायोत्सर्ग के काल का निर्धारण होता है। प्राणायामपद्धति से कायोत्सर्ग करने पर ही णमोकारमंत्र का पूर्ण फल प्राप्त होता है, अतः कायोत्सर्गपूर्वक णमोकार-मंत्र का विधिपूर्वक जाप कर कर्म क्षय करें।

रजवाँस (सागर) म.प्र.

साई इतना दीजिए जामें कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

संत कबीर

# ॐ जैन-परम्परासम्मत 'ओम्' का प्रतीक-चिह्न ॐ

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवञ्जया मुणिणो ।  
पढमक्खरणिप्पणो ओंकारो पंचपरमेद्धी ॥

जैनागम में अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु यानी मुनिरूप पाँच परमेष्ठी ही आराध्य माने गए हैं। इनके आद्य अक्षरों को परस्पर मिलाने पर 'ओम्' / 'ओं' बन जाता है। यथा, इनमें से पहले परमेष्ठी 'अरिहन्त' या 'अर्हन्त' का प्रथम अक्षर 'अ' को लिया जाता है। द्वितीय परमेष्ठी 'सिद्ध', शरीररहित होने से 'अशरीरी' कहलाते हैं। अतः 'अशरीरी' का प्रथम अक्षर 'अ' को 'अरिहन्त' के 'अ' से मिलाने पर अ+अ='आ' बन जाता है। इसमें तृतीय परमेष्ठी 'आचार्य' का प्रथम अक्षर 'आ' मिलाने पर आ+आ मिलकर 'आ' ही शेष रहता है। उसमें चतुर्थ परमेष्ठी 'उपाध्याय' का पहला अक्षर 'उ' को मिलाने पर आ+उ मिलकर 'ओ' हो जाता है। अंतिम पाँचवें परमेष्ठी 'साधु' को जैनागम में 'मुनि' भी कहा जाता है। अतः मुनि के प्रारम्भिक अक्षर 'म्' को 'ओ' से मिलाने पर ओ+म्=ओम् या 'ओं' बन जाता है। इसे ही प्राचीन लिपि में ॐ के रूप में बनाया जाता रहा है।

'जैन' शब्द में 'ज', 'न' तथा 'जे' के ऊपर 'ऐ' संबंधी दो मात्राएँ बनी होती हैं। इनके माध्यम से ही जैन परम्परागत 'ओं' का चिह्न बनाया जा सकता है। इस 'ओम्' के प्रतीक चिह्न को बनाने की सरल विधि चार चरणों में निम्न प्रकार हो सकती है-

1. 'जैन' शब्द के पहले अक्षर 'ज' को अंग्रेजी में 'जे'=J लिखा जाता है। अतः सबसे पहले 'जे'-J को बनाएँ।

2. तदुपरान्त 'जैन' शब्द में द्वितीय अक्षर 'न' है। अतः उस 'जे'-J के भीतर/साथ में हिन्दी का 'न' बनाएँ।

3. चूँकि 'जैन' शब्द में 'जे' के ऊपर 'ऐ' संबंधी दो मात्राएँ होती हैं। अतः उसके ऊपर प्रथम मात्रा के प्रतीक स्वरूप उसके ऊपर चन्द्रबिन्दु बनाएँ।

4. तदुपरान्त द्वितीय मात्रा के प्रतीक स्वरूप उसके ऊपर चन्द्रबिन्दु के दाएँ बाजू में 'रेफ' जैसी आकृति बनाएँ।

इस प्रकार जैनपरम्परा सम्मत ॐ यानी 'ओम्' / 'ओं' की आकृति निर्मित हो जाती है।

जैनपरम्परा की अनेक मूर्तियों की प्रशस्तियों, यन्त्रों, हस्तलिखित ग्रन्थों, प्राचीन शिलालेखों एवं प्राचीन लिपि में भी इसी प्रकार से ॐ 'ओम्' / 'ओं' का चिह्न बना

हुआ पाया जाता है। वस्तुतः प्राचीन लिपि में 'उ' के ऊपर 'रेफ' के समान आकृति बनाने से वह 'ओ' हो जाता था। और उसके साथ चन्द्रबिन्दु प्रयुक्त होने से वह 'ओम्' / 'ओं'- ॐ बन जाता था। किन्तु वर्तमान में हस्तलिखित ग्रन्थ पढ़ने अथवा उनके लिखने की परम्परा का अभाव हो जाने के कारण अब प्रिंटिंग प्रेस में छपाई का कार्य होने लगा है। हम लोगों की असावधानी अथवा अज्ञानता के कारण प्रिंटिंग प्रेस में यह परिवर्तित होकर अन्य परम्परा मान्य ॐ बनाया जाने लगा। इसके दुष्परिणाम स्वरूप हम लोग जैन परम्परा द्वारा मान्य ॐ चिह्न को प्रायः भूल से गए हैं। और ॐ को ही भ्रमवश जैन-परम्परा-सम्मत मान बैठे हैं।



जैन परम्परा सम्मत इस ॐ को Shree लिपि के Symbol Font Samples के अन्तर्गत नं. 223 में N तथा नं. 231 में J को Key Strock करके प्राप्त किया या बनाया जा सकता है। एवं 'पूजा' फॉन्ट में Alt +0250 से भी ॐ प्राप्त किया जा सकता है। संभव है इसके अतिरिक्त 'क्लिप आर्ट' में अन्यत्र भी यह चिह्न उपलब्ध हो सकता है।

इस प्रकार जैन परम्परा को सुरक्षित रखने हेतु सभी मांगलिक शुभ अनुष्ठानों, पत्र-पत्रिकाओं, विज्ञापनों, इंटरनेट ग्रीटिंग्स, होर्डिंग्स, बैनर, एस. एम. एस. नूतन प्रकाशित होनेवाले साहित्य, स्टीकर्स, बहीखाता, पुस्तक, कापी, दीवाल आदि पर जैन परम्परा द्वारा मान्य ॐ का प्रतीक चिह्न बनाकर इसका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार किया / कराया जा सकता है।

इस संबंध में जैनधर्म में प्रभावनारत पूज्य आचार्यदेव, साधुगण, साध्वियाँ, विद्वन्मनीषी, प्रवचनकार भी अपने धर्मोपदेश के समय जैन परम्परागत इस ॐ 'ओम्' की जानकारी तथा इसे बनाने की प्रायोगिक विधि भी जन सामान्य को बतलाकर अर्हन्त भगवान् के जिन-शासन के वास्तविक स्वरूप को प्रकट कर / करा सकते हैं। इसे बनाने की विधि सुन-समझकर धार्मिक पाठशालाओं में अध्ययनरत बालक-बालिकाओं को इसकी प्रायोगिक विधि से अभ्यास कराए जाने पर भविष्य में उनके द्वारा इसे ही बनाना प्रारंभ किया जा सके।

# साम्राज्ञी शान्तलादेवी

पं. कुन्दनलाल जैन

पट्टमहादेवी शान्तलादेवी, होय्यसल वंश के, परम प्रतापी एवं पराक्रमी शासक, बिट्टिदेव (विष्णुवर्द्धन) की राजमहिषी थी।

शान्तलादेवी के पिता का नाम सारसिङ्गय्यहेग्गडे तथा माता का नाम मानिकव्वे था। इनका जन्म शक सं. १०१२ के आस-पास अनुमानित किया जाता है। इनके पति विष्णुवर्द्धन का राज्यकाल शक सं. १०२८ से १०६३ तक माना जाता है, शान्तला का विवाह विष्णुवर्द्धन से १६ वर्ष की आयु में राज्याभिषेक के समय होना चाहिए, अतः इनका जन्मकाल शक सं. १०१२ (+७८=१०९० ई.) अनुमानित किया जाता है। इनका जन्म कर्नाटक के बलिपु (बेलम्भव) ग्राम में हुआ था, जहाँ इनके पिता राज्य-प्रशासक एवं ग्राम प्रमुख थे। यह ग्राम होय्यसल राज्य की राजधानी द्वारवती (द्वार समुद्र) का एक प्रशासनिक प्रकाश था। इनके पिता वीर योद्धा, पराक्रमी और स्वामीभक्त थे, शैव मतानुयायी थे, जब कि इनकी पत्नी मानिकव्वे (शान्तला की माँ) जैन धर्मानुरागिणी थी। वह जिन-पूजा, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, रत्नत्रय व्रत धारण किया करती थी, जैनाचार्यों, मुनियों एवं जैन गुरुओं की भक्ति करती थी। अन्त समय इन्होंने सल्लेखना पूर्वक देह-विसर्जन किया था। इतनी अधिक धार्मिक विभिन्नताओं के बावजूद भी पति-पत्नी में परस्पर अपार स्नेहपूर्ण सामंजस्य एवं समन्वय था।

शान्तलादेवी ने अपनी माता के पूर्ण संस्कार अधिगृहीत किए थे, फलतः वह भी जिनशासन और जैन आचार्यों के प्रति विशेषरूप से भक्तिभाव रखती थी। जब वह केवल सात-आठ वर्ष की बालिका ही थी तभी उसके क्रिया-कलापों, विचारों तथा दैनिक व्यवहार से प्रभावित हो उसके गुरु वोकिमय्य ने भविष्यवाणी की थी कि शान्तला जगत-मानिनी बनकर सारे विश्व में गरिमायुक्त गौरव के साथ पूजी जानेवाली मानवदेवता की पदवी प्राप्त करेगी और सचमुच ही जैसे ही शान्तला ने षोडशी होकर युवावस्था में पद्मार्पण किया तथा होय्यसल वंश के परम प्रतापी तेजस्वी राजकुमार बिट्टिदेव या बिट्टिग (विष्णुवर्द्धन) की प्राणवल्लभा बनकर होय्यसल राज्य की साम्राज्ञी पद को सुशोभित किया तो गुरु वोकिमय्य

की भविष्यवाणी की सफलता के साक्षात् दर्शन हुए और लगभग ७०-७५ विरुदों से अलंकृत हो जगत-मानिनी कहलायी।

किंवदन्ती है कि शान्तला के पति विष्णुवर्द्धन रामानुजाचार्य के प्रभाव से वैष्णवधर्म में दीक्षित होने जा रहे थे। जब वे देवी के दर्शनों के लिए मंदिर गये तभी अचानक भयंकर भूकम्प आया, सारे राज्य में त्राहि-त्राहि मच गई, जिससे भयभीत हो विष्णुवर्द्धन ने वैष्णवधर्म में दीक्षित होने का विचार त्याग दिया और अपनी पट्टमहादेवी शान्तला के साथ-साथ जिनशासन के प्रति श्रद्धावान् बने रहे। साम्राज्ञी शान्तलादेवी ने धवला आदि ग्रन्थ ताड़-पत्रों पर उत्कीर्ण कराये थे। इनके पत्रों पर शान्तलादेवी और विष्णुवर्द्धन के चित्र अङ्कित हैं। यह राजशासन, कला, संगीत में तथा धार्मिक, समाज-सेवा आदि कार्यों में निष्णात थी, जिससे प्रजाजन उसके प्रति अत्यधिक श्रद्धावान्, विनीत और भक्त थे। उसके वैयक्तिक गुणों एवं शासकीय कुशलता के फलस्वरूप तत्कालीन प्रजाजनों ने उसे इतने अधिक विरुदों (विशेषणों) से अलंकृत किया था कि संभवतः संसार की कोई ही साम्राज्ञी या सम्राट् इतने अधिक अलंकारों से अलंकृत हुआ हो। तत्कालीन इतिहास तथा शिलालेख इन अलंकारों से भरे पड़े हैं। ये सब श्रवणवेलगोल के चन्द्रगिरि पर्वत पर निर्मित गंधवारण वसदि में उत्कीर्ण हैं।

राजमहिषी शान्तलादेवी गुणवती के साथ-साथ सुन्दर और रूपवती भी थी। इसलिए इतिहासकारों ने उसे अनेक सुन्दर अलंकारों से अलंकृत किया है। साम्राज्ञी शान्तलादेवी विद्या, बुद्धि-कौशल, प्रत्युत्पन्नमतित्व, कला-संगीत आदि व्यक्तिगत गुणों से इतनी अधिक समृद्ध एवं सम्पन्न थी कि लोगों ने उसे कई विशेषणों से विभूषित किया।

पटरानी शान्तला पतिव्रता थी, उसने अपनी भक्ति और सेवा-शुश्रूषा से अपने पति विष्णुवर्द्धन का मन जीत लिया था। इसीलिए उसे पातिव्रत-संबंधी अनेक अलंकारों से अलंकृत किया गया।

साम्राज्ञी शान्तलादेवी ने शक सं. १०४४ (+७८=११२२ ई.) के लगभग वेल्गुलु के चन्द्रगिरि पर्वत पर

अपने विरुद्ध 'सवति गन्धवारण' (अर्थात् सोतों के लिए मदनोन्मत्त हस्ति) के नाम पर 'गन्धवारण वसदि' का निर्माण कराया था तथा उसमें तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की पाँच फुट ऊँची कायोत्सर्गमुद्रा में सुन्दर कलापूर्ण मनोज्ञ प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराई थी।

शान्तलादेवी ने गन्धवारण वसदि के निर्माण के पश्चात् उसके पूजन-प्रक्षाल एवं अभिषेक हेतु वहीं पर एक गंग समुद्र नामक श्रेष्ठ सरोवर का निर्माण कराया तथा वसदि की सुरक्षा एवं संरक्षा हेतु तथा दैनिक कार्यकलापों के लिए एक ग्राम भी दान किया।

यद्यपि राजरानी शान्तलादेवी इतने अधिक सदगुणों से सम्पन्न थी कि सम्पूर्ण होय्यसल वंश का राज-शासन उसके इशारों पर नाचता था, पर दुर्भाग्य कि उसे दीर्घायुष्य प्राप्त नहीं था। वह बड़ी ही अल्पवय में, लगभग चालीस वर्ष की आयु में दिवंगत हो गयी। चैत्र शुक्ला पंचमी, सोमवार शक सं. १०५० (+७८=११२८ ई.) में महारानी

शान्तलादेवी शिवगंगे नामक स्थान पर अपने पति विष्णु-वर्द्धन, माता मानिकव्वे और पिता मारसिङ्गय्यहेग्गडे को बिलखता छोड़ अपने गुरु प्रभाचन्द्र की उपस्थिति में सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण कर स्वर्ग सिधारी। इसका विस्तृत उल्लेख श्रवणवेलगोल की चन्द्रगिरि पहाड़ी पर गन्धवारणवसदि के द्वितीय मण्डप के तृतीय स्तम्भ पर उत्कीर्ण शक सं. १०५० के शिलालेख में है। इसमें चालीस श्लोक हैं जिनमें होय्यसल वंश के राजाओं के पराक्रम के वर्णन के बाद शान्तलादेवी के सल्लेखना का विवरण है।

साम्राज्ञी शान्तला जैनधर्म की कीर्तिध्वजा को फहराती हुई अल्पायु में ही दिवंगत हो गई थी, पर उसकी यश-पताका आज भी लगभग नौ सौ वर्ष के इतिहास में निष्कलुष और अक्षुण्ण बनी हुई है।

'जैन इतिहास के प्रेरक व्यक्तित्व' से साभार

## आपके पत्र

### मानव-रथ-एक सार्थक पहल

पिछले दिनों ११ से १७ फरवरी २००८ तक हरदा (म.प्र.) की जैनसमाज के उत्साही सदस्यों ने गजरथ के स्थान पर मानवरथ चलाकर अपने पूर्व इतिहास को पुनर्जीवित करने का अनूठा एवं ऐतिहासिक निर्णय लिया है, इसके लिए हरदा जैनसमाज बधाई की पात्र है, साथ ही प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी विनय भैया जिनके निर्देशन में यह मानव-रथ का आयोजन हुआ, वे भी इस अनुकरणीय पहल के लिए बधाई के पात्र हैं। पिछले कुछ सालों से पंचकल्याणकों में मूक और निरीह किन्तु विशाल प्राणी हाथी पर उसके मालिकों तथा रथों पर बैठने वाले इन्द्र इन्द्राणियों की एक बड़ी फौज द्वारा जाने-अनजाने में जो जुल्म किए जा रहे हैं, उनका प्रायश्चित्त करना बहुत जरूरी हो गया है और इस दिशा में समाज के सभी आचार्यों, मुनिराजों, विद्वानों तथा चिन्तकों को विचार करके गजरथ के बजाय मानव-रथ जो जैनधर्म की पुरानी पद्धति रही है, जिसे विमान की शोभा यात्रा आदि भी कहा जाता है, उसे लागू किया जाना चाहिए। हरदा की जैनसमाज ने अपने अहंभाव को त्याग कर रथों पर बैठने के बजाय सिर्फ भगवान् को बैठाकर स्वयं अपने हाथों से रथ खींचने का जो साहसिक कार्य किया है, इसके लिए मैं एक बार पुनः उन्हें बधाई देता हूँ और पूरे देश की जैनसमाज से अनुरोध करता हूँ कि वह पंचकल्याणकों में गजरथ जैसे हाथियों के लिए पीड़ादायक साधनों को तिलाञ्जलि देकर भगवान् को पालकी में विराजमान कर, अपने हाथों से उन्हें परिक्रमा करवायें तो उन्हें सही पुण्य और आनंद की प्राप्ति होगी। धन्यवाद!

विनोद कुमार 'नयन'  
भोपाल (म. प्र.)

# जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

**प्रश्नकर्ता-** श्री राजीव जैन अमरपाटन

**जिज्ञासा-** क्या मनुष्य या तिर्यच आयु का बंध करनेवाला अणुव्रत तथा महाव्रत धारण कर सकता है?

**समाधान-** उपर्युक्त विषय पर गोम्मतसार-जीव-काण्ड गाथा ६५३ में इस प्रकार कहा है-

चत्तारि विखेत्ताइं आउगबंधेण होदि सम्मत्तं।

अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं॥ ६४३॥

**अर्थ-** चारों गति संबंधी आयुकर्म बंध हो जाने पर भी सम्यग्दर्शन हो सकता है। किन्तु अणुव्रत और महाव्रत देवायु के अतिरिक्त अन्य आयु के बंध होने पर प्राप्त नहीं हो सकते।

**भावार्थ-** देव और नारकियों के न अणुव्रत होते हैं और न महाव्रत होते हैं। तिर्यचों के अणुव्रत होते हैं। यदि किसी तिर्यच को नारक, तिर्यच या मनुष्यायु का बंध हो गया है, तो उसके अणुव्रत नहीं हो सकते, किन्तु सम्यक्त्व हो सकता है। मनुष्यों के अणुव्रत तथा महाव्रत दोनों हो सकते हैं। यदि किसी मनुष्य को नारक, तिर्यच या मनुष्यायु में से किसी एक का बंध हो गया है, तो वह अणुव्रत तथा महाव्रत धारण नहीं कर सकता। (किन्तु सम्यक्त्व की उत्पत्ति हो सकती है)। देव तथा नारकी के तिर्यचायु तथा मनुष्यायु का बंध हो जाने पर भी सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है।

**जिज्ञासा-** क्या सामायिक प्रतिमाधारी, वस्त्ररहित होकर सामायिक कर सकता है?

**समाधान-** उपर्युक्त जिज्ञासा के समाधान में रत्नकरंडक-श्रावकाचार का श्लोक न १३९ द्रष्टव्य है-

चतुरावर्तत्रित्तयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।

सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी॥

**अर्थ-** मानवधर्म टीकाकार आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के अनुसार चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त और चार बार नमस्कार करनेवाला, यथाजात (नग्न) रूप से अवस्थित ऊर्ध्वकायोत्सर्ग और पद्मासन का धारक तीनों योगों की शुद्धिवाला, तीनों संध्याओं में वन्दना को करनेवाला, सामायिक-प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

प्रथमानुयोग में सेठ सुदर्शन के संबंध में कथा आती है कि वे अष्टमी तथा चतुर्दशी को श्मशान में

वस्त्ररहित होकर सामायिक किया करते थे। इससे यह प्रमाणित है कि सामायिक-प्रतिमाधारी को नग्न होकर (एकांत में) सामायिक करना आगम सम्मत है।

**प्रश्नकर्ता-** पं. देवेन्द्रकुमार शास्त्री जयपुर

**जिज्ञासा-** क्या म्लेच्छ लोगों का खानपान व आचरण भ्रष्ट होता है? इनकी क्या विशेषताये हैं?

**समाधान-** म्लेच्छ दो प्रकार के होते हैं १.

कर्मभूमिज म्लेच्छ २. अंतरद्वीपज म्लेच्छ। इनमें अंतरद्वीपज म्लेच्छ तो वे हैं, जो ९६ अंतरद्वीपों में रहते हैं, जिनका शरीर मनुष्यों जैसा होता है, परन्तु उनके मुख अश्व, सिंह, कुत्ता, भैंसा, सुअर, व्याघ्र आदि के मुख के समान होते हैं। ये कुभोगभूमिज मनुष्य भी कहलाते हैं। इनके शरीर की अवगाहना २००० धनुष होती है। ये सभी मंदकषायी, प्रियंगु पुष्प के समान श्यामल वर्णवाले और एक-पल्य-आयुवाले होते हैं। इनका भोजन फल-फूल तथा मीठी मिट्टी होता है। ये सभी मरण कर, यदि मिथ्यादृष्टि हैं, तो भवनत्रिकों में अथवा सम्यग्दृष्टि हों तो पहले तथा दूसरे स्वर्ग में जन्म लेते हैं। आपके प्रश्न से प्रतीत होता है कि आपने कर्मभूमिज म्लेच्छ से संबंधित प्रश्न पूछा है। अतः अब उनकी चर्चा की जाती है।

कर्मभूमिज म्लेच्छ भी दो प्रकार के होते हैं। १. म्लेच्छखण्डों में रहनेवाले मनुष्य २. आर्यखण्डों में रहनेवाले म्लेच्छ। म्लेच्छखण्डों में रहनेवाले मनुष्य के संबंध में-

म्लेच्छों के संबंध में श्री आदिपुराण भाग २, पर्व ३१ में इस प्रकार कहा है-

धर्मकर्मबहिर्भूता इत्यमी म्लेच्छका मताः।

अन्यथाऽन्यैः समाचारैरार्यावर्तेन ते समाः॥ १४२॥

**अर्थ-** ये म्लेच्छखण्ड में निवास करनेवाले मनुष्य, धर्मक्रियाओं से रहित हैं, इसलिए म्लेच्छ माने गये हैं। धर्मक्रियाओं के सिवाय अन्य आचरणों से, आर्य खण्ड में उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के समान हैं।

इस प्रमाण से ज्ञात होता है कि ये मनुष्य, धार्मिक संस्कारों से रहित होने के कारण ही म्लेच्छ कहे गये हैं। परन्तु शारीरिक सुन्दरता गुणवानपना, सांसारिक कार्यों में दक्षता आदि में आर्यखण्ड के मनुष्यों से हीन नहीं



होते हैं। इसी कारण से, चक्रवर्ती जब म्लेच्छ खण्डों की विजय करता है, तब ३२००० रानियाँ भी म्लेच्छ खण्ड से आती हैं। श्री लब्धिसार के अनुसार इन म्लेच्छ खण्डों से आर्यखण्ड में आये हुये कर्मभूमिज म्लेच्छ तथा उनकी संतानों से उत्पन्न चक्रवर्ती की सन्तान भी दीक्षा के योग्य होती है। यहाँ के निवासी धार्मिक संस्कारों से शून्य होने के कारण नियम से प्रथम मिथ्यात्वगुणस्थान-वर्ती ही होते हैं।

आर्यखण्ड में रहनेवाले म्लेच्छों के संबंध में इस प्रकार वर्णन प्राप्त होता है-

(१) श्री सर्वार्थसिद्धि ३/३६ में इस प्रकार कहा है-

“कर्मभूमिजाश्च शक्यवनशवरपुलिन्दादयः।”

अर्थ- जो शक, यवन, शवर और पुलिन्दादिक हैं, वे कर्मभूमिज म्लेच्छ हैं।

(२) श्री महापुराण में इस प्रकार कहा है- ये म्लेच्छ अर्धबर्बर देश में रहते थे, इनका शरीर पुष्ट और अंजन के समान काला, सूखे पत्तों के समान कांतिवाला (कांतिहीन) तथा लाल रंग का होता था। ये पत्ते पहनते थे। हाथों में हथियार लिये रहते थे। मांस इनका भोजन था। इनकी ध्वजाओं में वराह, महिष, व्याध्र, वृक और कंक चिन्ह अंकित रहते थे।

ये म्लेच्छ हिंसाचार, मांसाहार, बलात् परधनहरण और धूर्तता करने में आनंद मानते थे।

(३) श्री नियमसार गाथा १६ की टीका में कहा है-

**म्लेच्छाः पापक्षेत्रवर्तिनः।**

अर्थ- पापक्षेत्र में रहनेवाले म्लेच्छ हैं। म्लेच्छ खण्ड में रहनेवाले मनुष्यों के संबंध में शास्त्रों में अधिक वर्णन देखने में नहीं आया। जो उपलब्ध हो पाया है, उसके अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त निन्द्य आचरणवाले म्लेच्छ आर्यखण्ड के अलावा म्लेच्छखण्ड में भी पाये जाते हैं।

**प्रश्नकर्ता-** सौ. संगीता नंदुरबार

**जिज्ञासा-** क्या ज्वारभाटा लवणसमुद्र में ही आता है, अन्य समुद्रों में नहीं आता? कृपया आगम से बतायें।

**समाधान-** करणानुयोग के ग्रंथ (त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि) के अनुसार ज्वारभाटा आने का कारण यह है कि लवणसमुद्र में स्थित पातालों में शुक्ल-

पक्ष में पानी का तल ऊपर हो जाता है। यह ज्वारभाटा लवणसमुद्र में ही आता है, अन्य समुद्रों (कालोदधि आदि) में नहीं आता, क्योंकि उनमें पाताल नहीं है। पाताल सिर्फ लवण समुद्र में ही है। पातालों के संबंध में तिलोयपण्णत्ति में इस प्रकार कहा है-

लवणोवहि-बहु-मज्झे, पादाला ते समंतदो होति।

अटुत्तरं सहस्सं जेट्ठा मज्झा जहण्णा य ॥ ४-२४३८।

अर्थ- लवण समुद्र के बहुमध्य भाग में चारों ओर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य एक हजार आठ पाताल हैं।

चत्तारो पायाला, जेट्ठा मज्झिल्लआ वि चत्तारो।

होदि जहण्ण सहस्सं, ते सव्वे रंजणायारा। ४-२४३९ ॥

अर्थ- ज्येष्ठ पाताल चार, मध्यम पाताल चार और जघन्य पाताल १००० हैं। ये सब पाताल घड़े के आकार सदृश हैं।

टंकुक्किण्णायारो, सव्वत्थ सहस्स जोयणवगाढो।

चित्तोवरि-तल-सरिसो, पायाल-विवज्जिदो एसो ॥

४-२७६३ ॥

अर्थ- टांकी से उकेरे हुये के सदृश आकारवाला यह कालोदधि समुद्र, सर्वत्र एक हजार योजन गहरा, चित्रा पृथ्वी के उपरिम तल भाग के सदृश अर्थात् समतल तथा पातालों से रहित है।

उपर्युक्त तीन गाथाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि लवण समुद्र में १००८ पाताल हैं, जबकि कालोदधि में पाताल नहीं हैं। इसी कारण लवण समुद्र का पानी शुक्ल पक्ष में ऊपर उठ जाता है, जबकि कालोदधि समुद्र का नहीं।

अब करणानुयोग के उपर्युक्त ग्रंथों के आधार से ज्वार भाटा (समुद्र के पानी का तल ऊपर उठ जाना) के संबंध में कुछ लिखा जाता है।

ज्येष्ठ पाताल २००००० योजन गहरे, मध्यम पाताल २०००० योजन गहरे तथा जघन्य पाताल १००० योजन गहरे हैं। इनके ऊँचाई की अपेक्षा तीन भाग करने पर ऊपर के १/३ भाग में जल, मध्यम १/३ भाग में जल एवं वायु तथा नीचे के १/३ भाग में मात्र वायु है। इन तीन भागों में से मध्य का जल एवं वायुवाला भाग, निचले भाग की वायु से प्रेरित होकर चलाचल होता है। इस भाग के चंचलपने के कारण ही शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष में लवणसमुद्र के जल की वृद्धि-हानि

दृष्टि गोचर होती है। पातालों की वायु सर्वकाल स्वभाव से ही शुक्लपक्ष में बढ़ती है, एवं कृष्णपक्ष में घटती है। शुक्लपक्ष में प्रतिदिन २२२२२/९ योजन वायु बढ़ने से जल का तल भी इतना ही ऊपर हो जाता है। पूर्णिमा को पातालों के अपने-अपने तीन भागों में से नीचे के दो भागों में वायु और ऊपर के तृतीय भाग में केवल जल विद्यमान रहता है और नीचे के तीसरे भाग में केवल वायु रहती है। लवणसमुद्र के मध्य में अमावस्या के दिन जल की ऊँचाई समभूमि से ११००० योजन रहती है, जो प्रतिदिन ३३३/४ योजन की वृद्धि होती हुई पूर्णिमा को वह ऊँचाई १६००० योजन हो जाती है।

इस प्रकार यह ज्वारभाटा (समुद्र में पानी का तल ऊपर उठना) केवल लवणसमुद्र में ही होता है, अन्य में नहीं।

**प्रश्नकर्ता-** सौ. संगीता नंदुरबार

**जिज्ञासा-** विभंगावधिज्ञान गुणप्रत्यय है या भव प्रत्यय? समझाइयेगा।

**समाधान-** मिथ्यादृष्टि जीवों को जो अवधिज्ञान होता है, वह विभंगावधि कहलाता है। देव तथा नारकी जीवों में अवधिज्ञान नियम से पाया जाता है। अतः जो देव या नारकी मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनको होनेवाला अवधिज्ञान विभंगावधि है और वह भवप्रत्यय (जिसमें वह भव ही कारण हो) होता है।

मनुष्य तथा तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवों के विभंग-ज्ञान दो प्रकार से पाया जाता है।

(१) जिन सम्यग्दृष्टि जीवों को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, यदि वे मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं, तो उनका अवधिज्ञान विभंगावधि हो जाता है।

(२) मिथ्यादृष्टि मनुष्य एवं तिर्यचों में विभंगावधि ज्ञान की उत्पत्ति भी देखी जाती है। जैसा गोम्मटसार जीवकांड गाथा ३०५ की टीका में कहाँ है- मिथ्यादर्शन-कलङ्कितस्य जीवस्य अवधिज्ञानावरणीयवीर्यान्तराय क्षयोपशमजनितं---विपरीतग्राहकं तिर्यग्मनुष्यगत्योः तीव्रकायक्लेशद्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्ययं---अवधिज्ञानं विभंगमिति।

**अर्थ-**मिथ्यादृष्टि जीवों के अवधिज्ञानावरण एवं वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से उत्पन्न, विपरीत ग्रहण करने वाला, तिर्यच तथा मनुष्यगति में, तीव्र कायक्लेशरूप द्रव्यसंयम से उत्पन्न गुणप्रत्यय विभंगावधि है।

उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार तिर्यच तथा मनुष्यों में होनेवाला विभंगावधि, गुणप्रत्यय होता है। विशेष यह भी जानना चाहिये कि इसका उत्कृष्ट एवं जघन्यकाल अंतमुहूर्त ही होता है।

**जिज्ञासा-**क्या पुण्य या शुभोपयोग सर्वथा हेय है?

**समाधान-** कतिपय तत्त्वजिज्ञासु शुभोपयोग को अशुभोपयोग के समान बताते हुए उसे सर्वथा हेय ओर संसार का कारण निरूपित करते हैं। उनका कहना है कि शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों रागात्मक हैं। राग संसार का कारण है, अतः हेय है। यह बात आगम के अनुकूल नहीं है। न तो शुभोपयोग अशुभोपयोग के समान है और न ही वह संसार का कारण है। यह बात सत्य है कि शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों रागात्मक वृत्ति हैं। पर इतने भाव से ही दोनों समान नहीं हो सकते। देखा जाए तो नल और नाली दोनों में जल है, पर दोनों की गुणवत्ता में जमीन आसमान का अन्तर है। आचार्य गुणभद्र के अनुसार जैसे प्रभातकालीन लालिमा के बिना सूर्योदय नहीं होता, उसी प्रकार शुभोपयोग के बिना शुद्धोपयोग नहीं होता। शुभोपयोग प्रभातकालीन लालिमा हैं के समान है, तो अशुभोपयोग संध्याकालीन लालिमा की भाँति है। आचार्य विद्यासागर जी ने लिखा है कि संतजनों के प्रति राग भी हमारे पाप को मिटानेवाला है। जल कितना भी गर्म क्यों न हो, आग को बुझाने की सामर्थ्य उसमें बनी रहती है। इसलिए आचार्य ने शुभोपयोग को कर्मनिर्जरा का कारण बताया है। आगम में इसके पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। उनमें से कुछ प्रमाणों को हम यहाँ दे रहे हैं।

१. श्री अमृतचन्द्राचार्य ने तत्त्वार्थसार ४/१०३ में कहा है-

हेतुकार्यविशेषाभ्याम् विशेषः पुण्यपापयोः।

हेतू शुभाशुभौ भावौ, कार्ये च सुखासुखे॥

**अर्थ-** पुण्य तथा पाप में हेतु और कार्य की विशेषता से भेद है। पुण्य का हेतु शुभभाव है और पाप का हेतु अशुभभाव है। पुण्य का कार्य सुख है और पाप का कार्य दुःख है।

२. आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने मोक्षपाहुड गाथा २५ में इस प्रकार कहा है-

वर वयतवेहि सगो, मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहिं।

छायातवड्डियाणं, पडिवालंताण गुरुभेयं॥ २५॥

अर्थ- जिस प्रकार छाया और धूप में स्थित पथिकों के प्रतिपालक-कारणों में बड़ा भेद है, उसी प्रकार पुण्य और पाप में भी बड़ा भेद है। व्रत तप आदि रूप पुण्य श्रेष्ठ है, क्योंकि उससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है। और उससे विपरीत अव्रत तथा अतप आदि रूप पाप श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि उससे नरक की प्राप्ति होती है।

३. आदिपुराण पर्व ३७/२०० में आचार्य जिनसेन ने इस प्रकार कहा है-

ततः पुण्योदयोद्भूताम् मत्वा चक्रभृतः श्रियम्।

चिनुध्वं भो बुधाः पुण्यं यत्पुण्यं सुखसम्पदाम्॥

अर्थ- हे पंडितजन! चक्रवर्ती की विभूति को पुण्य के उदय से उत्पन्न हुई मानकर, उस पुण्य का संचय करो, जो समस्त सुख सम्पदाओं की खान है। (यदि पुण्य को सर्वथा हेय ही कहना उचित होता, तो श्री जिनसेनाचार्य इस प्रकार ज्ञानियों को पुण्य-उपार्जन करने का उपदेश क्यों देते)?

४. आत्मानुशासन श्लोक २३ में आचार्य गुणभद्र स्वामी ने इस प्रकार कहा है-

परिणाममेवकारणमाहुः खलु पुण्यपापयोः प्राज्ञाः।

तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः॥

अर्थ- बुद्धिमानों ने निश्चय करके पुण्य-पाप का कारण परिणामों को ही कहा है, अतः पाप का नाश और पुण्य का संचय भली प्रकार से करना ही योग्य है।

५. आचार्य पद्मनंदी महाराज ने भी पद्मनंदी पंचविंशतिका श्लोक १/१८८ में इस प्रकार कहा है- हे पंडितजनो! पुण्य राशि के भाजन हो, अर्थात् पुण्य का उपार्जन करो। यदि पुण्य सर्वथा हेय होता, तो सम्यग्दृष्टि के पुण्य को मोक्ष का कारण क्यों कहा जाता?

६. आ. कुन्दकुन्द स्वामी प्रवचनसार में कहते हैं-

एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो धरत्थाणं।

चरिया परेत्ति भणिदा ता एव परं लहदि सोक्खं॥ २५४॥

अर्थ- यह प्रशस्तभूत चर्या अर्थात् शुभोपयोग मुनियों के गौणरूप से होता है, और गृहस्थ के मुख्यरूप से। और वे उसी भाव से परम सौख्य अर्थात् मोदन को प्राप्त करते हैं। ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।

७. आ. अमृतचन्द्र ने प्रवचनसार गाथा २५६ की टीका में कहा है-

शुभोपोगस्य सर्वज्ञव्यवस्थापितवस्तुषु प्रणिहितस्य  
पुण्योपचयपूर्वकोऽपुनर्भावोपलम्भः किल फलम्।

अर्थ- सर्वज्ञ-व्यवस्थापित वस्तुओं में उपयुक्त शुभोपयोग का फल पुण्यसंचयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है। आ. जयसेन ने भी उक्त प्रसंग में शुभोपयोग को परम्परा से मोक्ष का कारण कहा है।

८. पंचास्तिकाय गाथा १७० की उत्थानिका और टीका में भी शुभोपयोग को परम्परा से मोक्ष का कारण कहा है-"अर्हदादिभक्तिरूपपरसमयप्रवृत्तिः साक्षान्मोक्ष-हेतुत्वाभावेऽपि परम्परामोक्षहेतुत्वसद्भावद्योतनमेतत्।"

अर्थ- यहाँ अर्हन्त आदि की भक्तिरूप परसमय की प्रवृत्ति (शुभोपयोग) साक्षात् मोक्ष का हेतु न होने पर भी परम्परा से मोक्ष का हेतु है, यह दर्शाया है।

९. ऐसा ही देवसेनाचार्य ने भावसंग्रह में कहा है-सम्मादिट्ठी-पुण्णं ण होइ संसारकारणं नियमा॥ ४०४॥

अर्थ- नियम से सम्यक्दृष्टि का पुण्य संसार का कारण नहीं होता है। और भी देखें-

१०. आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार गाथा ४५ में अर्हन्त भगवान् को पुण्यप्रकृति का फल कहा है 'पुण्णफला अरहंता' पुण्य का फल अरहंतपना है।

११. उपर्युक्त की टीका में श्री अमृतचन्द्रस्वामी लिखते हैं कि- अर्हन्तः खलु सकलसम्यक्परिपक्वपुण्य कल्पपादपफला एव भवन्ति।

अर्थ- अरहंत भगवान् वास्तव में सम्यक् प्रकार से सम्पूर्ण परिपक्व हुये पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के फल ही हैं।

१२. आचार्य जयसेन स्वामी इसकी टीका इस प्रकार करते हैं-

अर्थ- जो पंचमहाकल्याणक की पूजा उत्पन्न करने वाला है, त्रिलोक को जीतनेवाला है, वह तीर्थकर नाम का पुण्यकर्म है। इसी के फलभूत अरहंत भगवान् होते हैं।

१३. श्री अकलंक स्वामी राजवार्तिक में इस प्रकार लिखते हैं-

'तत्र पुण्यास्त्रवो व्याख्येयः प्रधानत्वात् तत्पूर्वक-त्वात् मोक्षस्य।' (७/१)

अर्थ- अब पुण्यास्त्रव का व्याख्यान करना चाहिए, क्योंकि वह प्रधान है। उस पूर्वक ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

१४. सर्वार्थसिद्धिकार ने पुण्य की परिभाषा अध्याय ६/३ की टीका में इस प्रकार की है-

'पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यं- जो आत्मा को पवित्र करता है, या जिसके द्वारा आत्मा पवित्र होता है, वह पुण्य है।'

१५. आचार्य विद्यानंद जो श्लोकवार्तिक व अष्ट-सहस्री में लिखते हैं-

मोक्षस्यापि परमपुण्यातिशयचारित्रविशेषात्मक पौरुषाभ्याम् एव संभावत्। (पृ. २५७)।

अर्थ- परमपुण्य के अतिशय से तथा चारित्र रूपी पुरुषार्थ से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त सभी प्रभावों को ध्यान में रखते हुये पुण्य को सर्वथा हेय कहना छोड़कर, पंडित टोडरमलजी के मोक्षमार्ग प्रकाशक अधिकार ७ में कहे इन वचनों का

आश्रय लेना चाहिए- 'जहाँ शुद्धोपयोग होता जानै तहाँ तो शुभकार्य का निषेध ही किया, अर जहाँ अशुभोपयोग होता जाने, तहाँ शुभ को उपायकरि अंगीकार करना युक्त है।'

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध है, कि पुण्य सर्वथा हेय नहीं है, अपितु कथंचित् हेय तथा कथंचित् उपादेय है। हम गृहस्थों को तो इस काल में शुद्धोपयोग होता नहीं, अतः शुभोपयोग अर्थात् पुण्य को ही उपादेय मानकर अंगीकार करना चाहिए। इतना अवश्य है कि पुण्य साक्षात् मोक्ष का कारण नहीं है। साक्षात् मोक्ष का कारण तो शुद्धोपयोग ही है।

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा (उ.प्र.)

## शास्त्र-परिषद् का शिविर एवं अधिवेशन सम्पन्न

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रपरिषद् के तत्त्वावधान में सराकोद्वारक राष्ट्रसंत परमपूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी महाराज, पूज्य मुनि संयमसागर जी एवं क्षु. सहज सागर जी महाराज के धावन सान्निध्य में दिगम्बर जैनचौबीसी बड़ा मंदिर चंदेरी के विशाल सभाकक्ष में एक सप्त दिवसीय जैन विद्या शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविर, जिनवाणी की भव्य शोभायात्रा एवं परिषद् का अधिवेशन दिनांक 18 जून से 25 जून 08 तक अतिभव्यरूप में संपन्न हुआ। शिविर में पूरे देश से समागत सौ (100) विद्वानों ने तत्त्वार्थसूत्र, सिद्धांत, जैनन्याय, व्याकरणशास्त्र, विधिविज्ञान, दशधर्मप्रवचन आदि विषयों पर शास्त्रानुकूल प्रामाणिक प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रशिक्षक विद्वानों में डॉ. श्रेयांसकुमार जैन बड़ौत, डॉ. कमलेश जी वाराणसी, डॉ. अशोक कुमार जी वाराणसी, प्रा. अरुणकुमार जैन ब्यावर, प्रा. निहालचन्द जी बीना, ब्र. जयकुमार निशांत टीकमगढ़, प. विनोदकुमार जैन रजवाँस ने अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानों के माध्यम से विविधविद्याओं में आगम विप्रतिपत्तियों का समाधान प्रस्तुत करते हुये नवोदित विद्वानों के ज्ञान का संवर्द्धन एवं अभिनमन किया। स्थानीय समाज के लाभार्थ छहढाला, बालबोध भाग १, २ की कक्षाएँ चलायी गयीं।

शिविर-समापन के अवसर पर दिनांक 24 जून को पालकी में जिनवाणी को विराजमान कर एक भव्य विराट् शोभायात्रा चंदेरी नगरी की वीथियों से प्रवर्तित की गई। शोभायात्रा में पीतवस्त्रधारिणी नारियाँ हाथ में कलश, सौ से अधिक विद्वान् अपने सिर पर शास्त्रजी विराजमानकर चले रहे थे।

दिनांक 25 जून को शास्त्र-परिषद् का अधिवेशन डॉ. श्रेयांसकुमार जी की अध्यक्षता में आयोजित हुआ, जिसमें विद्वानों द्वारा जिनवाणी की महिमा, स्वाध्याय का महात्म्य एवं समाज और संस्कृति के उन्नयन में विद्वानों की भूमिका पर प्रकाश डाला। अधिवेशन में अल्पसंख्यक घोषित राज्यों के अन्तर्गत जैन संस्थाओं में जैनप्रतिभाओं को ही नियुक्ति में प्राथमिकता प्रदान करने तथा भारत सरकार द्वारा जैनसमुदाय को अल्पसंख्यक घोषित करने, 'सरिता' पत्रिका द्वारा जन-जन की आस्था के केन्द्र जैनमुनियों के विरुद्ध लेख प्रकाशित करने पर निन्दा प्रस्ताव, विश्वविद्यालयों में प्राकृत एवं जैन विद्या विषय प्रारम्भ करने विषयक अनेक प्रस्ताव पारित किये गये। अधिवेशन में परिषद् द्वारा विद्वानों को पुरस्कृत किया गया एवं आगामी पुरस्कारों की घोषणा की गयी। चंदेरी समाज ने सभी विद्वानों का भावभीना स्वागत किया।

पं. विनोदकुमार जैन रजवाँस  
संयुक्त मंत्री- अ. भा. दि. जैन शास्त्री परिषद्

## आत्मानुशासन

समीक्षक : प्राचार्य अभयकुमार जैन

**मूललेखक-** महाकवि आ.श्री गुणभद्रजी, पद्यानुवाद-गुणोदय- महाकवि आ.श्री विद्यासागर जी, अन्वयार्थ एवं भद्रार्थ- आर्यिका रत्न मृदुमति माताजी, संयोजन-बालब्रह्म- बहिन श्री पुष्पा दीदी (रहली), संस्करण-प्रथम सन् २००८ (बीना चातुर्मास), मूल्य- आत्मनुशासन, प्रकाशक- श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पटनागंज (रहली) जिला. सागर म.प्र.

**प्राप्तिस्थान-** १. चौधरी अरविन्दकुमार सुरेशकुमार जैन, आजाद कटपीस सेन्टर, राव मार्केट, रहली जिला- सागर (म.प्र.) मो. ९३२९४१२९१२, ९३२५६९१११५

२. ब्रह्म. सुषमा दीदी, अरहन्त कोल डिपो, लिंक रोड, सागर (म.प्र.) मो. ९८२७६६८९१६

३. कु. सविता जैन पुत्री श्री महेन्द्रकुमार जैन, डॉ. श्रीवास्तव के मकान के पीछे, आजादपुरा ललितपुर (उ.प्र.) मो. ९३०५५५३७८९

समीक्ष्य कृति 'आत्मानुशासन आचार्यश्री जिनसेन के परम शिष्य प्रखर तपस्वी, बालब्रह्मचारी अतिशय गुरुभक्त, सिद्धान्त-न्याय, व्याकरण-दर्शन, आयुर्वेद आदि अनेक विषयों के पारंगत संस्कृतभाषा के श्रेष्ठ कवि ईस्वी सन् की ९वीं शताब्दी के अपूर्व विश्रुत विद्वान् सेनसंघ के आचार्य श्रीगुण-भद्राचार्य की अमूल्य शिक्षाओं से परिपूर्ण अमरकृति है। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और सूक्तिकाव्य-तीनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट, सुभाषितों से परिपूर्ण एक अपूर्व आध्यात्मिक रचना है। इसमें आत्मा को अनुशासित करने की, आत्मा को जीतने की, आत्मजयी बनने की आत्महितकारी शिक्षा दी गई है। संसार-ताप-संतप्त विषयासक्त प्राणियों को विषयों से विरक्त कर आत्महित के लिए प्रेरित करना ही इसका प्रयोजन है। अनादिकालीन विषयासक्ति का विरेचन करने के लिए यह कृति रामबाण औषधि है। इसके विविध पद्य रंग-बिरंगे फूलों की तरह ज्ञान और वैराग्य की सुगन्धि (खुशबू) सर्वत्र बिखेरते हैं। अध्यात्म के शिखर पर आरोहण के लिए यह सोपान-समान है।

इसके सतत् स्वाध्याय से ज्ञानावरण के क्षयोपशम के साथ ही चारित्रमोहनीय कर्म का भी क्षयोपशम तथा विषयों से विरक्ति होने के साथ-साथ नये संवेग का जागरण होता है। अतिचारों की शुद्धि, परिणामों में विशुद्धि और तपों में वृद्धि होने के साथ-साथ धर्म और धर्म के फल में प्रीति भी पैदा होती है। अतः मुमुक्षुओं के लिए परम उपकारक तथा सामान्यजन के लिए सुख-

शान्ति और सन्तोषकारक है।

आत्मानुशासन पर संस्कृत में श्री प्रभाचन्द्राचार्य की टीका तथा ढूंढारी भाषा में पं. श्री टोडरमल जी की भाषा वचनिका प्रकाशित हैं। आ. श्री विद्यासागर जी ने भी इसका हिन्दी पद्यानुवाद 'गुणोदय' नाम से किया है। छिन्दवाड़ा निवासी पं. श्री अभयकुमार जी शास्त्री ने भी श्री टोडरमलजी की वचनिका का हिन्दी भाषानुवाद तथा आत्मानुशासन का पद्यानुवाद किया है, परन्तु ऐसी अमूल्य एवं उपयोगी कृति का अन्वयार्थ सहित भावार्थ का प्रकाशन अभी तक देखने में नहीं आया था। इसके अभाव में जिज्ञासु पाठक संस्कृत पद्यों का अर्थ हृदयंगम नहीं कर पाते थे। प्रस्तुत प्रकाशन का वैशिष्ट्य यही है कि आ. श्री विद्यासागर जी की परम विदुषी शिष्या १०५ आर्यिकारत्न श्री मृदुमति माता जी ने प्रेरणादायी 'वैराग्य-संबद्धक' इस अमरकृति का अन्वयार्थ और भद्रार्थ (भावार्थ) लिखकर जिज्ञासु पाठकों को यह कृति बड़ी सरल और बोधगम्य बना दी है। इसके पठन-पाठन और स्वाध्याय से सामान्य जन भी स्वाध्याय में रुचिवन्त होकर वैराग्य एवं आत्मकल्याण के प्रशस्त पथ पर अग्रसर होकर ज्ञान और वैराग्य का लाभ प्राप्त कर सकेंगे। आत्मानुशासन का सरल और स्पष्ट अन्वयार्थ और भावार्थ लिखकर वन्दनीय पूज्य माताजी ने पाठकों और स्वाध्याय प्रेमियों पर बड़ा उपकार किया है। इसी प्रकाशन में आ. श्री विद्यासागर जी के पद्यानुवाद 'गुणोदय' को भी मूलसंस्कृत पद्यों के नीचे प्रकाशित किया गया है।

आर्यिकारत्न श्री मृदुमति माताजी 'यथानाम तथा गुण' हैं, जिनकी वाणी में मिश्री सा माधुर्य, हृदय में वात्सल्य और प्राणिमात्र के प्रति असीम करुणा का सरोवर है। जिनकी चर्या और आचार में मूलाचार समाहित है। वे सरल उदारचेता तथा गुरु के प्रति असीम श्रद्धा-भक्ति से परिपूर्ण हैं। सतत् श्रुताभ्यास, आत्मचिन्तन, मनन-लेखन में लीन, आगम एवं अध्यात्म के तलस्पर्शीज्ञान के अर्जन में चेष्टारत, भक्तों के प्रति स्नेहार्द्र, धर्मोपदेश द्वारा जिनशासन की प्रभावना करनेवाली, शान्तपरिणामी तथा सत्यथप्रेरक हैं। जिज्ञासुओं की जिज्ञासाओं का आगमोक्त समाधान कर उन्हें सन्तुष्ट करती हैं।

आप आगम-सिद्धान्त-न्याय-व्याकरण-काव्य-छन्द-अलंकार आदि की विशेषज्ञा होने के साथ-साथ हिन्दी और संस्कृत में काव्यरचना करने में प्रवीण हैं। आपके द्वारा लिखित स्तुतियाँ, स्तवन बड़े मार्मिक, प्रभावी, हृदयस्पर्शी, श्रद्धा-भक्ति और उदात्तभावों से भरपूर हैं। आपका चिन्तन प्रखर और लेखनी सशक्त है। अनेक कालजयी रचनाएँ आपकी लेखनी से प्रसूत हुई हैं। विद्याशाला, विद्यासागर उपवन, अनुपम गुरुस्तुति, पुरुदेव स्तवन, ओंकार-अर्चना, जिनवाणीस्तुति आदि आपकी प्रकाशित रचनाएँ हैं। संस्कृत के विविध छन्दों में सरस, मधुर प्रसादगुणयुक्त मनोहारी रचना करने में भी आप

दक्ष हैं। आपकी काव्यप्रतिभा विस्मयकारी है। तथा मधुर सुरीली आवाज मुग्धकारी है।

आपके भाव, भाषा, शब्दचयन, बिम्ब प्रतिबिम्ब, उपमाएँ, उत्प्रेक्षाएँ सभी अनुपम और अनूठे हैं। शब्दों पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपका शब्दचयन भावों और प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल है। शब्द प्रभावी और भावाभिव्यक्ति में सक्षम हैं। सरल बोधगम्य साहित्यिक भाषा में अपने विचारों-भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति देना आपकी विशेषता है। आत्मानुशासन के प्रकाशित इस संस्करण में संकलित/उद्धृत आपकी स्तुतियाँ और संस्कृत पद्य आपकी विशिष्ट काव्यप्रतिभा को प्रकट करते हैं। हम आशा करते हैं, कि आपकी लेखनी से भविष्य में और भी अप्रतिम अनूठी स्वतन्त्र काव्य-कृतियों की सर्जना होवे।

आत्मानुशासन के इस नये प्रकाशित संस्करण का स्वाध्याय-मनन-चिन्तन कर अधिकाधिक भव्य प्राणी अपने आत्मकल्याण का पथ प्रशस्त करें। इसी सद्-भावना के साथ हम वन्दनीय पूज्य माताजी के प्रति बड़े कृतज्ञ तथा श्रद्धावनत हैं कि उन्होंने इस वैराग्यवर्धक आत्मकल्याणकारी कृति का अन्वयार्थ एवं भद्रार्थ (भावार्थ) लिखकर हम अज्ञप्राणियों पर महान् उपकार किया है।

कानूनगोवार्ड, बीना (म.प्र.) 470 113

## सुविधा नहीं संयम

गर्मी का समय था, उन दिनों में मेरी शारीरिक अस्वस्थता बनी रहती थी। मैं आचार्य महाराज के पास गया और मैंने अपनी समस्या निवेदित करते हुये कहा- आचार्य श्री जी! पेट में दर्द (जलन) हो रहा है। आचार्य महाराज ने कहा- गर्मी बहुत पड़ रही है, गर्मी के कारण ऐसा होता है और तुम्हारा कल अंतराय हो गया था, इसलिए पानी की कमी हो गई होगी सो पेट में जलन हो रही है। कुछ रुककर गंभीर स्वर में बोले कि क्या करें यह शरीर हमेशा सुविधा ही चाहता है, लेकिन इस मोक्षमार्ग में शरीर की और मन की मनमानी नहीं चल सकती। "वहिर्दुःखेषु अचेतनः" अर्थात् बाहरी दुःख के प्रति अचेतन हो जाओ, उसका संवेदन नहीं करो, सब ठीक हो जायेगा।

आचार्य श्री के एक वाक्य में पूरा सार भरा हुआ है, हमें यह श्रद्धान कर लेना चाहिए कि मोक्षमार्ग में मन और शरीर को सुविधा नहीं देनी है, बल्कि, मन और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखकर समताभाव बनाये रखना है। वे हमेशा चाहे अनुकूल-प्रतिकूल कैसी भी परिस्थिति रही आवें, मन में समता का भाव बनाये रखते हैं और चेहरे पर कभी प्रतिकार जैसा भाव दिखाई नहीं देता।

वश में हो सब इन्द्रियाँ, मन पर लगे लगाम।

वेग बड़े निर्वेग का, दूर नहीं फिर धाम॥

मुनि श्री कुन्थुसागरकृत 'अनुभूत रास्ता' से साभार

पुस्तक : बेटियाँ हमारी शान, लेखक : श्री विनोद कुमार जैन 'नयन', पृष्ठ : 32,  
सहयोग राशि : बीस रुपये, प्रकाशक : नमन-सृजन सामाजिक कल्याण समिति, भोपाल

जब भी भारतवर्ष के गौरव की चर्चा की जाती है, तो वह माँ से शुरू होती पाई गई है, माँ, जो कल किसी की पुत्री थी। बेटी का चरमोत्कर्ष माँ है और पूज्य माँ का आधार है योग्य बेटी। कहें योग्य बेटी ही पूज्य माँ बन सकती है। अयोग्य तो गणिका, कुलटा आदि का रंग-रूप-सरूप ही धारण कर पाती है। भारत का अतीत योग्य बेटियों और पूजनीय माताओं से भरा पड़ा है। यहाँ हर घर में उनके दर्शन होते रहे हैं। योग्य बेटियों की परम्परा निरंतर थी, है, परन्तु अभी एक-दो दशकों से बेटियों पर कुठाराघात करने की गोपन-कार्रवाई शुरू की गई है, जिसके फलस्वरूप देश में बेटियों की संख्या कम हो पड़ी है। जाहिर है कि बेटियाँ कम जन्मेंगी, तो बधुएँ भी कम नजर आयेंगी और माताएँ भी।

इसी चिन्ता पर गीतकार श्री विनोद कुमार 'नयन' ने गहन विचार किया है, फलस्वरूप उनकी लेखनी ने प्रस्तुत पुस्तक 'बेटियाँ हमारी शान' को जन्म दिया। सम्पूर्ण पुस्तक में सहज-सरल शब्दों और साधारण-तुकबंदी के माध्यम से उन्होंने उस विराट् सत्य के दर्शन करा दिये हैं, जिसे बड़े-बड़े महाकवि अपने कीमती 'महाकाव्य' में नहीं करा पाये, तब लगा कि सचाई अपना लेने से तुकबंदी का वजन भी महाकाव्य जितना हो जाता है।

स्लोगन/नारों का अपना एक अस्तित्व होता है, प्रभाव होता है। जो कार्य सौ तलवारों से सौ बहादुर नहीं कर सकते, वह कार्य एक नारे से सौ साधारण-आदमी कर सकते हैं, यही है इस पुस्तक की उपस्थिति का सरोकार।

नारे 'स्थायी महत्त्व का साहित्य' बन सकते हैं, यह श्री 'नयन' ने सिद्ध करके दिखला दिया है। यह उनके सोच का सफल प्रयास है। पढ़ें-

बेटी तो बोझा लगे, बचपन से ही चार।  
प्यारा है बेटा, भले मूरख और गँवार॥

इसी तरह भ्रूणहत्या के विरुद्ध तुकबंदी कर, 'नयन' ने भारी प्रभावशाली पंक्तियाँ दी हैं-

जो बेटे, बेटी में भेद करे, अरे वह कैसी महतारी है?  
जो कोख में बेटी को मारे, वह जननी नहीं, हत्यारी है।

एक कविता सास-बहू-संबंधी है, तो एक दहेज के विरुद्ध शंखनाद कर रही है। एक कविता में बेटियों के अथक कार्यों और आरामाभाव पर दृष्टि डालते हैं-

'बेटियाँ कितना काम करें?

नहिं पलभर आराम करें।'

यह पीड़ा पिता, भाई, चाचा, और माँ को सबसे पहले समझनी चाहिए, तभी तो बाद में ससुर, देवर, ननदोई और सासों-ननदें समझेंगी। क्योंकि विदा के बाद माता-पिता बेटी की बहुत याद करते हैं, चिन्ता करते हैं, अतः वह बिदा के पूर्व भी करनी चाहिए। पढ़ें- पुस्तक में 'याद आये बेटियाँ' गीत।

कवि-गीतकार श्री 'नयन' ने एक रचना के माध्यम से नारी-शक्ति पर भी कलम चलायी है, जो प्रेरक और भावपूर्ण है। इसी क्रम में 'माँ को समर्पित स्लोगन', नारी-महिमा, दमदार बेटियाँ, लड़ रही बेटियाँ, बाल विवाह के खिलाफ, बेटियाँ बहक जायें ना, आदि रचनाएँ भी पठनीय हैं। बेटियों के पक्ष में कवि एक सशक्त मंच से बोलता-मिलता है हर रचना में। उनकी भावनाएँ आदर पायेंगी। अध्ययनाभाव के कारण कवि उत्तम-शब्द-शक्ति संयोजित नहीं कर पाते, यह सत्य सभी विद्वान-पाठकों को गड़ेगा। फिर भी, मानवीय-धरातल जुटाने की आशा में, देश की बेटियाँ और बेटियों को स्नेहादर देनेवाले सुसंस्कृत परिवार, इस संकलन की भूरि-भूरि सराहना करेंगे, श्री 'नयन' के रचनाधर्म को आदर देंगे। १९ मार्च १९५३ को जन्मे 'नयन' शीघ्र ही वरिष्ठ नागरिकों और वरिष्ठ साहित्यकारों की सूची में अपना स्थान बनानेवाले हैं, किन्तु यह संकलन वरिष्ठों जितना सम्मान उन पर बरसाने में सफल रहा है।

४०५, सरल कुटी गढ़ाफाटक, जबलपुर (म.प्र.)

## समाचार

### कुम्भोज-बाहुबली में सम्यग्दर्शन संस्कार-शिविर सम्पन्न

प.पू. आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के पावन आशीर्वाद से एवं उनके सुयोग्य शिष्य प.पू. नियमसागर जी महाराज और प.पू. अक्षयसागर जी महाराज तथा आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज (दक्षिण) शिष्यों के पावन सान्निध्य में श्री अतिशय क्षेत्र बाहुबली में सम्यग्दर्शन संस्कार शिविर सानंद संपन्न हुआ।

यह शिविर दिनांक २१ मई २००८ को महिलाओं का और २३ मई से १ जून २००८ तक पुरुषों का ऐसे दो विभागों में संपन्न हुआ। शिविर में लगभग ५००० महिलाओं एवं पुरुषों ने भाग लेकर धर्मज्ञान का लाभ उठाया।

शिविर में एक साथ ३८ क्लासें चलती थीं। शिविर में मुनियों के साथ ब्र. वसंतदादा पाटील (कोथली), पं. रतनलाल जी बेनाड़ा (आगरा) पं. मूलचंदजी लुहाडिया (किशनगढ़), अॅड. रावसाहेब चौगुले, श्रीमती प्रभावती पाटील, श्रमण संस्कृति संस्थान (सांगानेर) के अनेक विद्वद्गण एवं इंदौर आश्रम की ब्रह्मचारिणीयों एवं ब्रह्मचारियों का मार्गदर्शन मिला।

प्रातः काल में योगज्ञ फूलचंद जैन (छतरपुर) द्वारा योग का अभ्यास कराया गया। शिविर में बालबोध १ व २ छहढाला, तत्त्वार्थसूत्र, सम्यग्ज्ञान, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरंड-श्रावकाचार का अध्ययन कराया गया। प.पू. १०८ नियमसागर जी महाराज द्वारा सम्यग्ज्ञान विषय पर अत्यंत सुलभ एवं सुंदर शैली में धर्म का प्ररूपण किया गया, उससे बहुत से लोग प्रभावित हुए। प.पू. १०८ अक्षयसागर जी महाराज जी के द्वारा रत्न-करंडक-श्रावकाचार के माध्यम से सम्यग्दर्शन का महत्त्व बताते हुए सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का विवेचन किया गया। दोनों महाराज जी के प्रवचन बहुत ही सरल, सहज एवं अति उत्तम थे। उनका प्रभाव शिविरार्थियों के ऊपर बहुत पड़ा। पं. रतनलाल जी बेनाड़ा ने भी तत्त्वार्थसूत्र का अत्यंत मधुर वचनों के माध्यम से ज्ञान कराया, उससे बहुत से लोग प्रभावित हुए। शिविरार्थियों के निवास एवं भोजन की व्यवस्था निःशुल्क

की गई थी।

पं. रतनलाल बेनाड़ा जी ने अपने मनोगत में कहा कि दक्षिण में ये जो शिविर की परम्परा शुरू हो गई है, इस से बहुत बड़ा कार्य होनेवाला है। यदि ऐसा ही यह कार्य आगे चलता रहे, तो गुरुवर्य आचार्य विद्यासागरजी महाराज संघसहित दक्षिण में अवश्य पधारेंगे।

बाहुबली ब्रह्मचारी आश्रम विद्यापीठ के विद्यमान संचालक आ.ध.बी.टी. बेडगे (गुरुजी) ने अपने मनोगत में कहा कि इस क्षेत्र पर मैं ६० साल में यह पहली बार देख रहा हूँ कि इतने विशाल मुनिसंघ के सान्निध्य में इतना विशाल महाशिविर प्रथम बार हो रहा है। और उन्होंने भावना व्यक्त की, कि यह शिविर हर साल इस क्षेत्र पर लगना चाहिये।

शिविर संपन्न होने में बा.ब्र. तात्या भैया की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। उन्हीं के निर्देशन में सभी बालब्रह्मचारी एवं स्वयंसेवकों ने अपनी सेवाएँ प्रदान कीं।

शिविर का संयोजन शांतिविद्य ज्ञानसंवर्धन समिति के अध्यक्ष अभयकुमार बरगाले (इचलकरंजी), उपाध्यक्ष अॅड. रामगोंडा चौगुले (सांगली), मुख्य संयोजक अॅड. आप्पासो पाटील (क. डीग्रज), महिला संयोजिका सौ. भारती पाटील (जयसिंगपुर), सहसंयोजक श्री सा.बा. पाटिल (यळगुड), श्री महावीर खुरपे (जुगुळ), अॅड. धन्यकुमार बेले (सांगली), चेतन पाटिल (जैनापुर), श्री कुमार संभोजे (सदलगा), अॅड. जयंत नवले (सांगली), श्री विजय कुमार वडगावे (पेट बडगाँव), सौ. अरुणा पाटिल (कुंभोज), सौ. सन्मती उगारे (कुरुंदवाड), सौ. विमल पाटील (इ. धामणी), सौ. सुरेखा चौगुले (चिंचवाड) एवं सौ. सरोजनी पाटिल (सांगली) ने किया।

अभयकुमार बरगाले, इचलकरंजी

जर्मनी के दो प्राकृत मनीषियों को प्राकृत ज्ञानभारती इंटरनेशनल अवार्ड

बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ, श्रवणबेलगोला द्वारा संचालित राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान द्वारा प्रवर्तित प्राकृत ज्ञानभारती इंटरनेशनल अवार्ड इस वर्ष २५ मई २००८ को जर्मनी के बर्लिन नगर में समायोजित



सम्मान समारोह में जर्मनी के प्रसिद्ध वयोवृद्ध, जैनविद्या मनीषी प्रोफेसर डॉ. विलियम बोली और प्रोफेसर डॉ. क्लास ब्रूह को प्रदान किये गये। श्रवणबेलगोला प्राकृत संस्थान के निर्देशक प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, प्रोफेसर हम्पा नागराजैय्या बैंगलोर, श्री अजित बेनाडी जर्मनी एवं डॉ. श्रीमती सरोज जैन, श्रवणबेलगोला ने जर्मनी में जाकर बर्लिन टेक्निकल यूनिवर्सिटी केम्पस के सामने स्थित राधारानी इंडियन रेस्टोरेन्ट के सभागार में इस सम्मान समारोह को आयोजित किया। इस सम्मान समारोह में प्रोफेसर बोली एवं प्रोफेसर ब्रूह के परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त बर्लिन, वर्जवर्ग, हेडलवर्ग, म्यूनिख तथा लंदन यूनिवर्सिटी के लगभग ४५ विद्वान् एवं पत्रकार सम्मिलित हुए।

स्वागत वक्तव्यों के उपरांत २००५ वर्ष का प्राकृत ज्ञानभारती इंटरनेशनल अवार्ड प्रोफेसर विलियम बोली, वेम्वर्ग तथा २००६ वर्ष का अवार्ड प्रोफेसर क्लास ब्रूह, बर्लिन को प्रदान करने की घोषणा की गई। इसके साथ ही प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, श्री अजित बेनाडी और प्रो. हम्पाना ने इन दोनों विद्वानों को इलायची और पुष्पों से निर्मित सुभाषित माला, मैसूरी पगड़ी और कढ़ाईयुक्त मनोरम शाल पहनाकर सम्मानित किया। प्रो. हम्पाना ने दोनों विद्वानों के अवार्ड प्रशस्ति-पत्रों का वाचन किया। प्रो. प्रेम सुमन जैन ने सरस्वती की सुन्दर प्रतिमाओं के साथ एक-एक लाख रुपये की अवार्ड राशि दोनों विद्वानों को समर्पित की। इस मनोरम दृश्य को अतिथियों ने अपनी तालियों की गड़गड़ाहट से ऐतिहासिक बना दिया। इसी अवसर पर डॉ. श्रीमती सरोज जैन श्रवणबेलगोला ने समुपस्थित प्रोफेसर क्लास ब्रूह की जीवन-संगिनी श्रीमती कृष्णा ब्रूह और प्रोफेसर विलियम बोली की जीवन संगिनी श्रीमती प्रोफेसर आनेग्रेट बोली का शाल उढ़ाकर सम्मान किया।

बर्लिन (जर्मनी) के इस सम्मान समारोह के साथ इस विदेश यात्रा में प्रोफेसर हम्पाना एवं प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन के फ्री यूनिवर्सिटी बर्लिन, वर्जवर्ग यूनिवर्सिटी एवं म्यूनिख यूनिवर्सिटी के प्राच्यविद्या संस्थानों में प्राकृत कथा साहित्य, श्रवणबेलगोला की सांस्कृतिक विरासत, कर्नाटक के अभिलेख, जैनधर्म एवं साहित्य पर विशेष व्याख्यान भी आयोजित हुए। बर्लिन के 'डॉस इन्टरनेशनल

जैन योगा प्राकृत सेन्टर' में इन भारतीय विद्वानों का व्याख्यान एवं सम्मान डॉ. नरेन्द्र जैन योगीराज द्वारा किया गया। पेरिस (फ्रांस) में प्रो. डॉ. नलिनी बलवीर ने प्रो. प्रेम सुमन जैन एवं डॉ. श्रीमती सरोज जैन का स्वागत किया एवं वहाँ पर जैनधर्म के अध्ययन की जानकारी दी। वारसा (पोलैण्ड) कि में प्रो. हम्पाना के दो व्याख्यान हुए एवं आचार्य अकलंक पर कार्य करने वाले प्रोफेसर पियार्ट बाकरोविज ने उनका सम्मान किया।

सरोज जैन

विभागध्यक्ष, प्राकृत-हिन्दी बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ धवलतीर्थम् श्रवणबेलगोला

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.) : गौरवपूर्ण उपलब्धियाँ

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त जैन-विद्वान् डॉ. सागरमल जी जैन ने भारतीय प्राच्य-विद्याओं के शिक्षण एवं शोध तथा योग एवं ध्यान की परम्पराओं के व्यावहारिक प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से वर्ष १९९७ में प्राच्य विद्यापीठ की स्थापना की, जिसे वर्ष २००० में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.) द्वारा शोध-संस्थान के रूप में मान्यता प्रदान की गई।

विगत ५० वर्षों से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जैन-विद्या के क्षेत्र में किए जा रहे उनके सराहनीय योगदान के लिए 'फेडरेशन ऑफ जैन एसोसिएशन्स इन नॉर्थ अमेरिका (यू.एस.ए.) नामक महासंघ द्वारा वर्ष २००६-०७ में डॉ. सागरमल जी जैन को 'जैना प्रेसिडेन्शियल अवार्ड' से सम्मानित किया गया। इसी प्रकार, म.प्र. शासन के संस्कृत बोर्ड द्वारा उन्हें 'वागर्थ सम्मान' से अलंकृत किया गया।

डॉ. सागरमल जी जैन के निर्देशन में साध्वी श्री प्रीतिदर्शनाश्री जी द्वारा 'यशोविजय का अध्यात्मवाद' विषय पर लिखित एवं प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध पर २००६-०७ में जैन विश्वभारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय) लाङ्गू द्वारा शोध-उपाधि (पी.एच.डी.) प्रदान की गई। इस प्रकार विद्यापीठ के समृद्ध राजगंगा ग्रन्थागार एवं डॉ. सा. के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन एवं निर्देशन में १९९७-२००७ तक की अवधि में कुल १४ शोधार्थियों को विभिन्न विश्वविद्यालयों से शोध-उपाधि प्राप्त हो चुकी है। इस दृष्टि से प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर की राष्ट्रीय स्तर पर

ख्यातिप्राप्त शोध- संस्थान के रूप में पहचान स्थापित हो गई है, जहाँ जैनों के सभी सम्प्रदायों के साथ साध्वी एवं मुमुक्षु विद्यापीठ एवं डॉ. सा. के मार्गदर्शन का लाभ लेने के लिए लालायित रहते हैं।

प्रकाशन के क्षेत्र में भी विद्यापीठ का ग्राफ बढ़ता जा रहा है। साध्वी श्री मोक्षरत्नाश्रीजी म.सा. द्वारा लिखित 'आचार दिनकर' ४ भागों में तथा जैन-संस्कार एवं विधि-विधान (एक तुलनात्मक अध्ययन), साध्वी श्री सौम्यगुणाश्रीजी म. सा. द्वारा लिखित 'जैन विधि-विधान का वृहत्

इतिहास', साध्वी श्री प्रियवन्दना श्री जी द्वारा लिखित 'जैन धर्म में समत्व-योग की अवधारणा' साध्वी श्री प्रियलताश्रीजी द्वारा लिखित 'त्रिविध आत्मा की अवधारणा' तथा साध्वी सम्यग्दर्शनश्री जी म. सा. द्वारा 'उपदेश पुष्पमाला' का हिन्दी अनुवाद (सभी, डॉ. सागरमलजी द्वारा सम्पादित) शीर्षक से ७ पुस्तिकाओं का वर्ष २००६-०७ में प्रकाशन हुआ है। इस प्रकार, विद्यापीठ से विभिन्न वर्षों में अब तक कुल १४ पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है।

प्रवक्ता-प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

## परमहंस श्री वर्द्धमान महावीर

महात्मा, श्री शिवव्रतलाल जी वर्मन, एम.ए.

हिन्दुओ! जैनी हम से जुदा नहीं हैं, हमारे ही गोस्त-पोस्त हैं। उन नादानों की बातों को न सुनो जो गलती से नावाकफियत से, या तास्सुब से कहते हैं 'हाथी के पाँव तले दब जाओ, मगर जैनमंदिर के अन्दर अपनी हिफाजत न करो' इस तास्सुब और तंगदिली का कोई ठिकाना है? हिन्दूधर्म तास्सुब का हामी नहीं है, तो फिर इनसे ईर्ष्याभाव क्यों? अगर अनेक किसी ख्याल से तुम्हें माफकत नहीं है, तो सही, कौन सब बातों में किसी से मिलता है? तुम उनके गुणों को देखो, किसी के कहे सुने पर न जाओ। जैनधर्म तो एक अपार समुद्र है, जिसमें इन्सानी हमदर्दी की लहरें जोर-शोर से उठती हैं। वेदों की श्रुति 'अहिंसा परमो धर्मः' यहाँ ही असली सूरत अख्तयार करती हुई नजर आती है।

श्री महावीर स्वामी दुनिया के जबरदस्त रिफार्मर और ऊँचे दर्जे के प्रचारक हुए हैं। यह हमारी कौमी तारीख के कीमती रत्न हैं। तुम कहाँ? और किन में धर्मात्मा प्राणियों की तलाश करते हो? इनको देखो, इनसे बेहतर साहिबे कमाल तुमको कहाँ मिलेगा? इनमें त्याग था, वैराग था, धर्म का कमाल था। यह इंसानी कमजोरियों से बहुत ऊँचे थे। इनका स्थान 'जिन' है, जिन्होंने मोह, माया, मन और काया को जीत लिया

था। ये तीर्थकर है, परमहंस हैं, इनमें बनावट नहीं थी, कमजोरियों और ऐबों को छुपाने के लिए इनको किसी पोशाक की जरूरत नहीं हुई। इन्होंने तप, जप और योग का साधन करके अपने आपको मुकम्मल बना लिया था। तुम कहते हो ये नंगे रहते थे, इसमें ऐब क्या? परमअन्तर्निष्ठ, परमज्ञानी और कुदरत के सच्चे पुत्र को पोशाक की जरूरत कब थी? सरमद नाम का एक मुसलमान फकीर देहली की गलियों में घूम रहा था, औरंगजेब बादशाह ने देखा तो उसको पहनने के लिए कपड़े भेजे। फकीर वली था, कहकहा मारकर हँसा और बादशाह की भेजी हुई पोशाक को वापिस कर दिया और कहला भेजा-

आँकस कि तुरा कुल्लाह सुल्तानी दाद।

मारा हम ओ अरबाब परेशानी दाद॥

पोशनीद लबास हरकरा देवे दीद।

ऐबा रा लववास अयानी दाद॥

अर्थ- यह लाख रुपये का कलाम है, फकीरों की नग्नता को देखकर तुम क्यों नाक भौं सुकोड़ते हो? इनके भाव को नहीं देखते। इसमें ऐब की क्या बात है? तुम्हारे लिए ऐब हो, इनके लिए तो तारीफ की बात हैं।

('जैन धर्म का महत्त्व', सूरत भाग 1 पृ.1-14)

'जन-जन के महावीर' (पृ.४५) से साभार

# मुनि श्री योगसागर जी की कविताएँ

## याचना

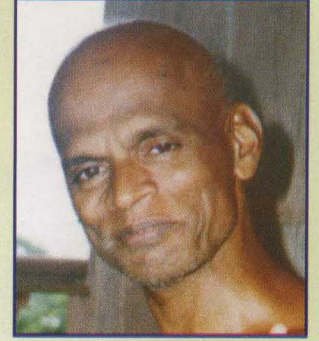
जीवन के उद्यान में  
दीनता का बीज  
कहीं से गिर गया  
कालान्तर में  
याचना का  
अंकुर फूट गया  
और  
कुछ ही दिनों में  
विशाल लता के  
रूप में छा गया।

जिसमें

बाँछना के फूल खिल गये  
घृणा की महक से  
सारा उद्यान छा गया  
जहाँ अहर्निश  
भ्रमररूपी मित्र  
वात्सल्य भावों से  
गुंजायमान होते थे  
वहीं आज  
अपनी नासा को  
बन्द किये  
निराश लौट रहे।

## चमत्कार

है विधियों के  
संस्कारों में  
चमत्कार  
कभी नमस्कार  
सत्कार तथा  
पुरस्कार  
तो कभी  
पत्रकार सा  
अचानक ही  
तिरस्कार, बहिष्कार  
और  
धिक्कार का अंधकार  
छा जाता है।

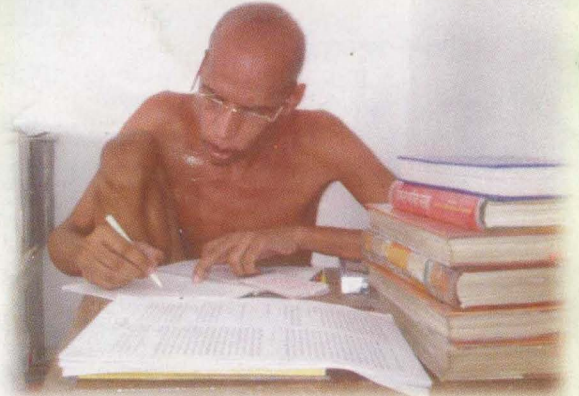


## ऋषि और रण

जहाँ ऋषि है  
वहाँ रण है  
यही मरण का कारण है  
पर जहाँ  
जिनवर का  
सतत सुमरण है  
वहाँ  
सु मरण है  
जिसके स्मरण के कारण  
स्व में रमता है  
यही मुक्ति-वधू के  
वरण में कारण है।

# मुनि श्री क्षमासागर जी की नई कविता

तुम यहाँ हो  
 तो लगाना है  
 मैं कोई अपना है  
 तुम कभी  
 यहाँ नहीं लगे  
 तब लगाना  
 कि कोई अपना नहीं है  
 तुम यहाँ हो कहीं  
 चले जाओ  
 तो लगाना मैं मैं  
 अपना कोई चला गया है  
 अलग मैं, तुम अब  
 लगे हो राय हो



कविता लिखते हुए मुनिश्री

14 June 08  
 42/25/08